Published by
The World Jain Mission
Aliganj, (Etah)
U P.

LIVE & LET LIVE.

AHINSA IS THE HIGHEST RELIGION

LOVE ALL, SERVE ALL.

Printed by
Mahavira Press
Aliganj (Etah)
U. P.

❀ प्रस्तावना ❀

मङ्गलं भगवान वीरो, मङ्गल गौतमोगणी।
मङ्गल कुन्दकुन्दाद्य, जैनधर्मोऽस्त्त मङ्गलं ॥

सनातन धर्म प्रवाह और तीर्थङ्कर

भ० महावीर वर्द्धमान, जैन माण्यताके अनुसार चौवीस तीर्थङ्करो मे सर्व अन्तिम तीर्थङ्कर थे। उनके पहले तेईस तीर्थङ्कर और हो चुके थे, जिनमें भ० ऋषभ पहले तीर्थङ्कर और मानवसंस्कृति के आदि सृष्टा थे। इसलिए ही वे मनुओ मे अतिम गिने गये हैं। पहले-पहले उन्होंने अहिसा धर्म की घोपणा भी हिमालय शैल की पवित्र कैलाश कूट से की थी-इसलिए वह कैलाशपति शिव और आदिदेव कहकर पुकारे गए। लोक को ऋषभ ने खाने-पीने की विधि और चलने फिरने का शऊर एव उठने बैठने का चलन सिखाया। इसलिए वह

विश्वगुरु के रूपमे भी मान्य हुए[1]। भारत मे जैनो के अतिरिक्त वैदिक ब्राह्मणों ने उन्हें आदि महादेव[2] और फिर पुराण काल मे विष्णु का आठवां अवतार माना[3] तथा बौद्धो ने उन्हे भारत का आदि सम्राट कहा, जिन्होने हिमालय से सिद्धि पाई थी[4]। किन्तु ऋषभ केवल भारत के ही आराध्यदेव नही थे। चूंकि उन्होने कृपि विद्या का आविष्कार कर लोक का उपकार किया था इसलिए वे लोक गुरु थे-विदेशा मे भी सर्वत्र ऋषभ किसी न किसी रूप में मानव के आराध्य रहे हैं।[5] लोक सदा ही उनके उपकार मे दबा रहेगा।

१.'तीर्थङ्कर भ० ऋषभदेव' देखो २ ऋग्वेद ३ भागवत पुराण अ०५ ४.मञ्जु श्री मूल कल्प ५.ती० भ० ऋषभ देव पृ०१४२-१५०

भ० ऋषभ के पश्चात जब जब धर्म का ह्रास और पाप की वृद्धि हुई तब तब काल क्रम के अंतर से अवशेष अन्य तीर्थङ्कर अवतीर्ण होते गए। भगवान् राम से कुछ पहले बीसवें तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथ हो चुके थे। और नारायण कृष्ण के समकालीन, बल्कि उनके चचेरे भाई, बाईसवें तीर्थङ्कर भ० अरिष्टनेमि थे। तेईसवें तीर्थङ्कर भ० पार्श्वनाथ अन्तिम तीर्थङ्कर भ० महावीर से केवल २५० वर्षो पहले वाराणसी मे हुए थे। सारांश यह कि जैनधर्म अन्तिम तीर्थङ्कर भ० महावीर के बहुत पहले से प्रचलित था। जैनधर्म का श्रीगणेश उनके द्वारा नही हुआ, बल्कि इस कल्प काल मे भ० ऋषभ ने भारत क्षेत्र मे पुनः उसका प्रकाश किया। अन्य विदेह आदि क्षेत्रो मे धर्म-तीर्थ सदा ही चलता रहता है। अतएव धर्म एक सनातन प्रवाह है।

तीर्थङ्करों की महत्ता।

तीर्थङ्करो की महत्ता उनकी २४ संख्या में अन्तर्निहित है। एक-एक अविसर्पिणी अथवा उत्सर्पिणी काल मे कालचक्र आध्यात्मिक-परकाष्टा की चरमोन्नति के संयोग को केवल २४ वार प्राप्त होता है-इसी कारण सर्वज्ञ-सर्वदर्शी पूर्ण पुरुष जैसे कि तीर्थङ्कर होते है, २४ ही होते हैं। उनके द्वारा धर्म चक्र का प्रवर्तन और धर्म तीर्थ की स्थापना होती है। उनके विषय में हमारे अमेरिकन मित्र-विचक्षण विवेकी वंधु श्री वुडलेन्ड काहलर सा० ने एक वडे मार्के की बात बताई थी। उन्होने लिखा कि तीर्थङ्करो की २४ संख्या ही वडी सार्थक है-दिन और रात के २४ घंटों के लिये उसमे हमे एक-एक तीर्थङ्कर मिल जाता है। प्रत्येक घंटे मे उन तीर्थङ्कर प्रभु के दिव्य

जीवन की अनूठी घटनाओ का अवलोकन करके जीवन के आध्यात्मिक रहस्य के विविध रूपो को हम आत्मसात करने में सफल होते हैं। किन्तु इसके आगे काहलर सा० सच्चे सम्यग्दृष्टि की निर्वि-कल्प दशा की ओर इशारा करते हुए लिखते हैं कि जब काल की भेद भरी परिधि से ऊंचे उठ जाते हैं तो हम सदा वर्तमान को ही पाते हैं-हमें बीते हुए का विछोह अथवा आनेवाले कल की रंगीनिया अपने संकल्प-बिकल्पो मे नही फंसा पाती हैं-हम जो वर्तमान में जागरूक हो गए हैं-विवेक पूर्वक वर्तमान को तीर्थङ्कर प्रभु का संबल लेकर संभाल रहे हैं! अतः तीर्थङ्करो की संख्या का सत्य रूप शाश्वत है-प्रत्येक काल और क्षेत्र का पूरक है-वह सदावहार जो है। उसमे हमे प्रतीत होता है कि गतकाल मे हमने अच्छाई को गमाया

नहीं और न उस अच्छाई को आगे के लिए टाला है। जो कुछ अच्छाई है उसे मुमुक्ष अपने वर्तमान की जागरुकता मे ग्रहण करके तीर्थङ्करो की परमोत्कृष्ट आध्यात्मिकता को पाता जा रहा है। यह है तीर्थङ्करो के नामो और सख्या का रहस्य-वे मानव जीवन के आध्यात्मिक विकास के लिए प्रकाश-स्तंभ हैं। * अतएव वे मङ्गल रूप हैं। इसलिये जैन मदिर तीर्थङ्करो के नाम-मङ्गल-गान से गुंजरित होते रहते हैं! उपरोक्त श्लोक जिन मदिरो मे गायाजाता है ।

---

* अन्य धर्मों में भी २४ महापुरुष माने गये हैं, परतु जैनो की मान्यता मौलिक है। हिन्दुओं की अवतार मान्यता बाद की है। इसीतरह यहूदी और ईसाई धर्मो के २४ एल्डर्स (Elders) जैन तीर्थङ्करो के अनुरूप बाद में माने गए।

तीर्थङ्करोपरान्त श्रुत परम्परा।

यह रही तीर्थङ्करो की पावन परम्परा, जिसका अवसान-पंचमकाल-कलिकाल के प्रारंभ से हुआ तब पूर्ण सर्वज्ञता-सारे केवल ज्ञान का स्वर्णयुग समाप्त हो गया। किंतु जिस प्रकार सूर्यास्त को संधिवेला पर धूमिल प्रकाश चमकता रहता है, उसी प्रकार पंचमकालके प्रारभ मे १६२ वर्षों तक सामान्यकेवली और श्रुतकेवलियो द्वारा ज्ञान की पूर्ण आभा झलकती रही। श्रुतकेवलियो मे सर्व अंतिम भद्रबाहु स्वामी थे। इसके पश्चात श्रुतधर ऋषियो की स्मृति शक्ति ज्यों ज्यो क्षीण होती गई, त्यो त्यो श्रुतज्ञान भी लुप्त होता गया। तदनुसार श्रुतकेवलियो के पश्चात १८३ वर्षों मे ११ दश पूर्वधर हुए जिनके बाद २२० वर्षों मे चार आचाराग धारी ऋषिवर हुए। उपरात ११८

वर्षों मे अर्हद्वलि, माघनंदि आदि एक देश अंग-ज्ञानधर मुनिपुङ्गव हुये इस प्रकार भ० महावीर के निर्वाण पाने के पश्चात ६८३ वर्षों तक सर्वज्ञ प्रणीत प्रवचन समुपलब्ध रहा-अंगज्ञान की धूमिल आभा चमकती रही। धरसेनाचार्य जी ने इसलिए महिमा-नगरी मे संघ-सम्मेलन करके अवशेष अंगज्ञान को लिपवद्ध करने और उसकी विशद व्याख्या रचने का उपक्रम किया था। इसी समयके लगभग कलिकाल-सर्वज्ञ योगिराट् युगप्रवर्तक आचार्य कुंदकुंद स्वामी हुये थे। +

+ श्वेताम्बर जैन मान्यता मे भी श्रुतज्ञान के लुप्त होने की वात कही गई है, परंतु उनकी मान्यता के अनुसार समग्र अंग-पूर्व श्रुत विलुप्त नही हुआ था, बल्कि उसके कुछ अंश लुप्त हो गए थे। जो श्रुतज्ञान उपलब्ध था उसे ई० छटवी शतब्दि मे वल्लभी नगर मे

भ० कुन्दकुन्दाचार्य

जहां चतुर्थकाल मे भ० महावीर और गणधर गौतम मंगलरूप हुये, वहां पंचमकाल में भ० कुंदकुंद स्वामी परम मंगलरूप मे मान्य हुये ! यद्यपि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो ही संप्रदायो मे उनकी मान्यता है, परंतु दिगम्बर सम्प्रदाय के यह परम आराध्य हैं। प्रायः प्रत्येक आचार्य अपने को उनसे सम्बंधित करने मे गौरव अनुभव करता है।

इसप्रकार जैन परम्परा के जो महान् प्रकाशस्तंभ रहे हैं और जो महान योगिराट् एवं

लिपिबद्ध किया गया था। वह आगमावृत्ति आजकल प्रचलित है।

संत होने के साथ साथ सर्वज्ञतुल्य वाणी के अधिष्टाता रहे, उन परम पूज्य प्रातः स्मरणीय भगवन् कुंदकुंदाचार्य स्वामी की अमूल्य श्रुतसूक्तियाँ उपस्थित करना, मानव मानस को सम्यक ज्ञान के आलोक मे ले आना ही है। इसलिये उनके 'पाहुड़' एवं 'अनुपेक्खा' ग्रंथों से सूक्तियो का संग्रह किया जा रहा है। संग्रह के क्रम और उद्देश्यादि पर आगे प्रकाश डाला जावेगा यहाँ पर पहले भगवद कुंदकुंद स्वामी के समय और जीवनी पर प्रकाश डाल देना समुचित है।

उनकी प्राचीनता

श्री कुंदकुंदाचार्य के समय पर विचार करने के लिए हमारा ध्यान उन दिगम्बर जैन पट्टावलियो की ओर जाता है, जिन्हे डॉ० हार्नले

ने प्रामाणिक मानकर 'इ डियन ऐंटीक्वेरी' मे प्रकशित किया था। × इन पट्टावलियो के अनुसार भ० कु दकु दाचार्य और उनके पूर्वज आचार्यो का समय बिवरण निम्नलिखित रूपो मे उपलब्ध होता है :-

१. *भद्रबाहु द्वि०* — विक्रम सं० ४ (चैत्र शु० १४ को आचार्य हुए) ई० पूर्व ५३
२. *गुप्तिगुप्त*-- विक्रम सं० २६ (फाल्गुण शु० १४ को आचार्य हुये) ई० पू० ३१
३. *माघनन्दिन् प्रथम*--वि० सं०३६(अषाढ शु० १४ को आचार्य हुये) ई0 पूर्व २१
४. *जिनचद्र प्रथम*--वि० सं० ४०(फाल्गुण शु० १४ को आचार्य हुए) ई0 पूर्व १७

× इ डियन एंटीक्वेरी, भा० २० व २१

९. कुंदकुंदाचार्य — वि० सं० ४९ (पौष कृ० ८ को आचार्य हुए) ई० पू० ८।

इस मान्यता के अनुसार भगवद् कुंदकुंदाचार्य ई० पूर्व पहली शती से ईस्वी पहली शती मे हुए प्रकट होते हैं। तामिल भाषा का महाकाव्य 'कुर्रल' भी लगभग इसी समय की रचना मानी जाती है, जो तमिलों के निकट वेद-तुल्य है। दक्षिण की जैन श्रुत परम्परा मे वह जैन ग्रंथ कहा गया है, जिसे स्वय कुंदकुंदाचार्य ने रचकर अपने शिष्य तिरुवल्लवर द्वारा तमिल साहित्य सघ में उपस्थित कराया था। इस उल्लेख से भी उनका समय ईस्वी प्रथम शती के आस पास घटित होता है। इसके प्रसग मे यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि भ० कुंदकुंदाचार्य और आचार्य उमास्वामी (अथवा उमास्वाति)

दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों को ही मान्य है इसका फलितार्थ यही होता है कि वह दिगंबर-श्वेतांबर संघभेद होने के पहले अर्थात सन् ७८ ई० से पहले ही इस धरातल को सुशोभित कर रहे थे।

उपरोक्त पट्टावलि के उल्लेखानुसार भ० कुंदकुंदाचार्य ईसापूर्व सन् ८ मे आचार्य पद के अधिकारी हुए थे। अतः उनका जन्म लगभग सन् ५२ ई० पू० मे हुआ था। वह ऐसे महान युग प्रवर्तक थे कि उनका अस्तित्व उस प्राचीन कालमे होना इसलिये युक्तियुक्त प्रतीत होता है कि उस समय जैन संघ मे बाह्यभेष और क्रियाकाण्ड को लेकर बड़ा संघर्ष चल रहा था-मानव धर्म के बाह्य रूप मे मार्गभ्रष्ट हो रहा था और भाव धर्म को

एक तरह भुला बैठा था। भ० कुंदकुंद ने इस भ्रान्ति को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया था। 'भावपाहुड' आदि ग्रंथ इस बात के साक्षी हैं।

उनका जीवन वृतान्त

उनका जन्म कहाँ, किसके यहाँ और कैसे हुआ? इन प्रश्नों का सही उत्तर पाना कठिन है; क्योंकि सभी महापुरुषों की तरह भ० कुंदकुंद स्वामी का जीवन भी अंधकार मे ग्रस्त है। फिर भी जैन श्रुति मे उनके विषय मे दो कथायें मिलती हैं। पहली कथा 'पुण्यास्रव कथा कोष' में मिलती है, जो कुछ ऐतिहासिक तथ्य को लिए हुए भासती है। उसके अनुसार भरतखंड के
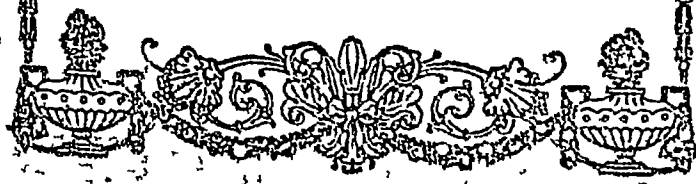
दक्षिण देश में पिदठ नाड्डु नामक विषय के अन्तर्गत कुरुमराई नामक नगर था जहाँ करण्डु नामक एक धनाड्य वणिक रहता था। श्रीमती उनकी पत्नी थी। मतिवरन् नामक ग्वाला उनकी गायें चराता था एक दिन मतिवरन् सेठजी की गाये जंगल मे चराने ले गया तो उसने देखा दावानल से सारा जंगल जल गया है—अलवत्ता उसके बीचोबीच मे कुछ पेड हरे भरे खड़े हुए हैं? यह देखकर उसे बड़ा कौतूहल हुआ-वह सोचने लगा कि इन वृक्षो मे क्या करामात है जो यह जलने से बच गये? अपना कौतुक बुझाने के लिये मतिवर उस हरियाले कुंज मे गया। उसने देखा वह किसी साधु का आवास था और उसने यह भी देखा कि एक पेड की खुखाल में कुछ शास्त्र रक्खे हुये हैं। शास्त्रो को देखकर उसका मन श्रद्धा से भर गया—उसे पूरा विश्वास हो गया

कि यह साधु का महात्म्य और उन शास्त्रो का ही प्रभाव था कि उस स्थान के हरेभरे वृक्षदावानल से बाल-बाल बच गये। मतिवर ने ज्ञान के पुन्ज को उठाया और भक्तिभाव से उनको अपने मस्तक पर रक्खा। उसने सोचा, कि उस जंगल मे वे शास्त्र सुरक्षित नहीं हैं। इसलिये वह उनको अपने घर लेगया यद्यपि मतिवर पढालिखा नही था; परंतु उसे ज्ञान की महिमा का बोध था। अतः उन शास्त्रो की वह खूब सार संभाल करता, उनकी विनय करता और उन पर पुष्पादि चढाता। एक दिन करमण्डु के यहा एक तपोधन साधु चर्या करते हुये आहार के लिये गये मतिवर ने उनकी बडी भक्तिकी और उन साधु जी को वह शास्त्र भेंटकर दिये। साधु जी ने उसे धर्मवृद्धि रूप आशीर्वाद दिया। ग्वाला

के हर्ष का वारापार न था उसने अपढ होते हुए भी ज्ञान का दान जो दिया था।

एकदिन मतिवर का जीव इस नश्वर शरीर से नाता तोड गया जैसे फल के पक चुकने पर वह वृक्ष से नाता तोड कर पृथ्वी का आश्रय लेता है, वैसे ही मतिवर का जीव अपने उस जन्म के शरीर वृक्ष से विगल होकर पृथ्वी-माँ के तुल्य सेठानी श्रीमती के गर्भ मे आया। नियत समय में माता श्रीमती ने एक विचक्षण बुद्धि और सुन्दर बालक को जन्म दिया। सेठ करमण्डु ने वडी खुशियाँ मनाईं और खूब दान पुण्य किया-अनेक शास्त्र लिखाकर वितरण किये। यही बालक आगे चलकर स्वानामधन्य आचार्य कुंदकुंद स्वामी हुए।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'-बालक

कुंदकुंद के विपय मे यह उक्ति सोलह आने चरितार्थ हुई। वह बचपन से ही विचक्षण और मेधावी थे। युवा होते होते वह अनेक विद्याओ मे निष्णात हो गए थे। इसके आगे कथा मे उनके साधुजीवन का वर्णन मिलता है-गृहस्थ जीवन के विषय मे कुछ भी वृत्तान्त नही मिलता।

काललब्धि को पाकर श्री कुंदकुंदजी आचार्य प्रवर श्री जिनचन्द्र जी के सम्पर्क मे आते हैं और उनसे जिनदीक्षा लेते है। मुनि हो जाने पर वह घोर तप तपते हैं। स्वाध्याय मे उनका मन ऐसा पगता था कि दुनिया की सभी बातें भूल जाते थे-शास्त्राध्ययन मे घंटे ही नही, बल्कि दिन और महीने बिता देते थे। यहां तक कि पढते पढते उनकी गरदन टेढ़ी हो गई, जिसके कारण लोग

उनको 'वक्रग्रीव' कहने लगे थे। वह महान तपस्वी थे, उनकी तपस्या की प्रसिद्धि दूर दूर तक हो गई। यहां तक कि एक दिन पूर्व विदेह मे स्थित तीर्थङ्कर श्रीमंदर स्वामी के समवशरण मे भी उनकी विद्वत्ता की चरचा हुई। वहां के सम्राट ने पूछा कि उस समय भारत क्षेत्र मे सबसे अधिक मेधावी और ज्ञानी महापुरुष कौन है? तो तीर्थंङ्कर की दिव्य ध्वनि में उन्होने सुना कि श्री कुंदकुंदाचार्य से बढकर और कोई ज्ञानी महापुरुष नही है! यह बात दो चारम-मुनियो ने भी सुनी, जिसे सुनकर उनको कौतूहल हुआ। वे उनके दर्शन करने के लिए आए। किंतु भ० कुंदकुंद उससमय स्वाध्याय और ध्यानाराधना मे तल्लीन थे-उनको वाहर का सुध बुध ही न थी। इसके

कारण चारण मुनियो तक को उनके अहंकारी होने की भ्रान्ति हो गई। सत की सूक्ष्म वृत्ति को समझ लेना सहज नही होता ! चारण मुनिवर वापस गये और उन्होने सभी वृत्तान्त वहा समव-शरण में प्रकट किया, तो श्री म दर स्वामी की दिव्यध्वनि से उनका समाधान हो गया और उन्होने माना कि भ० कु दकु द एक महान योगी और भाव-मुनि हैं। उनके समान ज्ञान वान पुरुष स सार मे कोई नही हैं। उनको उत्कण्ठा भ० कु दकु द के दर्श न करके चरचा-वार्त्ता करने के लिए तीव्र हो उठी-वे पुनः भारत आए और स्वामी जी से बात चीत करके निहाल हो गए। स्वय कु दकु द स्वामी को सिद्धात विषयक कुछ शङ्कायें थी ; जिनका समाधान स्वय तीर्थङ्कर श्रीम दर स्वामी से करना उनको

अभीष्ट था। इसीकारण वह उन चारणो के साथ पूर्व विदेह गए और जिनेन्द्र की वन्दना करके अपने को धन्य माना। उनकी दिव्य अमृत वाणी का पान करके तृप्त हो गये-शङ्कायें कफउड हो गयीं। समवशरण मे कुदकुद ही आयुकाय मे सबसे छोटे मानव थे-वहा के दीर्घकाय मानवो के लिए वह एक खिलोना हो गए थे, परतु उनको महान तपस्वी और श्रुतज्ञानी जानकर सभी उनके चरणो मे नतमस्तक हुए थे।

कहते हैं कि मार्ग मे उनकी मोर पंखो की पिच्छिका गिर गई थी। इस अभाव की पूर्ति के लिए जब मोर पंख नही मिले तो उन्होने गिद्ध पक्षी के पंखो की पिच्छिका ले ली थी, जिसके कारण वह 'गृद्धपिच्छका' कहलाये थे।

निस्संदेह भ० कुंदकुंद के जीव ने अपने पूर्व जन्म मे शास्त्र दान दिया था-उसीका यह परिणाम था कि वह महाज्ञानी और तपस्वी महापुरुष हुए। उन्हे 'आचार्य' का महान पद मिला। निस्संदेह आचार्य होकर उन्होंने धर्म की अपूर्व प्रभावना की! उक्तकथा का सार यह है जो हमें उनके जीवन का परिचय कराता है।

इसके अतिरिक्त एक दूसरी कथा 'कुंदकुंदाचार्य चरित्र' (सूरत) मे भी मिलती है, परंतु उसमे ऐतिहासिक तथ्य कम और कविकी कल्पना को अधिक स्थान दिया गया है। उसके अनुसार उनका जन्म स्थान मालवदेश होता है। वह कुंदश्रेष्ठी और कुंदलतासेठानी के पुत्र वताये जाते हैं। जन्म से ही उदासीनवृत्ति के होने के कारण वह

मुनि हो जाते हैं। शेष वर्णन उसमे भी उपरोक्त कथा जैसा है। लगता है कि कुंदकुंद नाम के कोई दूसरे आचार्य मालव मे हुये होंगे-उनके व्यक्तित्व को योगिराट् कुंदकुंद स्वामी से मिला देने की भ्रांति इसमें की गयी है।

दक्षिण देश के योगिराट् और उनके नाम

इन कथाओ और शिलालेखीय साक्षी से यह स्पष्ट होता है कि भ० कुंदकुंद स्वामी दक्षिण देश के एक महा आचार्य थे। उनका सम्बन्ध 'द्राविड गण' मूल संघ-से भी बताया जाता है-वैसे ही मूल संघ के प्रमुख आचार्य थे-इतने महान। कि उनकी एक आम्नाय अभीतक 'कुंद-

कुन्दाम्नाय' नाम से चली आरही है ।

दक्षिणभारत के 'मंत्रलक्षण' नामक एक हस्तलिखत ग्रन्थ मे एलाचार्य को लक्ष्य करके निम्न-लिखित श्लोक अङ्कित हैं:—

"दक्षिणदेशा मलये हेमग्रामे मुनिर्महात्मासीत् ।
एलाचार्यो नाम्ना द्रविलगणाधीशो धीमन् ॥"

इससे प्रकट है कि दक्षिणभारत के मलय देश मे एक हेमग्राम था, जहा पर द्रविल (द्रविड) गण के मुनीश विद्वान ऐलाचार्य रहते थे। यह कौन थे ? यह इस श्लोक से स्पष्ट नही है किंतु जैनसंघ मे ऐल नामका बहु प्रचलन रहा है-इस नाम के राजा और आचार्य कई हुये है। सम्राट भी ऐल कहलाते थे। श्री वीरा सेनाचार्य के गुरु का नाम भी ऐलाचार्य था। भ०.कुंदकुंदाचार्य का भी एक

नाम ऐलाचार्य था चूंकि 'ऐल' नाम जैनसंघ मे प्राचीन काल से चला आ रहा था और उसका सम्बन्ध हरिवंश से था। अतः संभव है कि भ० कुंदकुंद का सम्पर्क भी 'ऐल' से किसी रूप में रहा होगा इसलिए वह ऐलाचार्य कहलाये। हो सकता है कि पिदठनाड्डु देश कलिंग के निकट हो और ऐल खारवेल के राज्य का एक भाग हो। जो हो, निम्नलिखित अंश से स्पष्ट है जिसे श्रुतसागर जी ने पाहुड ग्रन्थों की टीका के अंत मे लिखा हैं कि भ० कुंदकुंदचार्य के पांच नाम थे जिनमे एक ऐलाचार्य भी था :-

"इति श्री पद्मनन्दि कुंदकुंदाचार्य वक्रग्रीवाचार्यैलाचार्य गृद्धपिच्छाचार्य नाम पंचक विराजितेन सीमन्धर स्वामीर ज्ञानसम्बोधित भव्य-जनेन श्री

जिन चन्द्र सूरि भट्टारक पट्टाभरणभूतेन कलिकाल सर्वज्ञेन विरचिते पट् प्राभृत ग्रथे ।"..... ....

(षट्प्राभृतादि संग्रह पृ० २६)

श्री श्रुत सागर जी ने भ० कुंदकुंदाचार्य के अपर नाम पद्मनन्दि, वक्रग्रीव, ऐलाचार्य एवं गृद्धिपिच्छकाचार्य भी लिखे हैं-उनको 'जिनचन्द्राचार्य' का शिष्य, कलिकालसर्वज्ञ तीर्थङ्कर सीमंधर स्वामी से ज्ञान प्राप्त लब्ध और 'षट् प्राभृत' ग्रंथ का रचयिता बताया जाता है। इस स्पष्टीकरण से यह तथ्य सूर्य प्रकाश के समान प्रगट सिद्ध होता है कि भ० कुंदकुंदाचार्य ऐलाचार्य कहलाते थे। इस दशामे उनकी तपोभूमि हेमग्राम के निकट स्थित हेमगिर (पोन्नूर हिल) हो सकती है, जिसके विषय में स्व० प्रो० ए० चक्रवर्ती ने

लिखा था कि मलय देश मद्रास प्रदेश के उत्तर अर्काट व दक्षिण अर्काट जिलो को पूर्वी घाटपर्वत माला के अन्तर्गत आता है। वांडिवाश तालुक का पोन्नूर ग्राम हेमग्राम है, जिसके निकट नीलगिरि पहाडी है। उस पहाडी की चोटी पर ऐलाचार्य के चरण चिन्ह है। कहते है, यहा ही उन्होने तपस्या की थी। साथ ही चक्रवर्ती जी ने ऐलाचार्य द्वारा ही तमिल के प्रसिद्ध ग्रंथ 'कुरल' का रचा गया सिद्ध किया है और उनको कुंदकुंदाचार्य बताया है। देखो (अंग्रेजी पञ्चास्तिकाय की भूमिका पृ० ७-१०)

शिलालेखों में

दक्षिण के शिलालेखों मे भी भ० कुंदकुंद

को एक अतीव प्राचीन काल प्रगट किया है, किंतु उनका नाम कोण्डकुन्द उनके जन्मनगर के कारण लिखा है। और उनको नाम पद्मनन्दि भी उसमे है श्रवणबेलगोल के शिलालेख नं० ४० के निम्नलिखित अंश से स्पष्ट है कि भ० कुंदकुंदाचार्य श्रुतकेवली भद्रबाहु की परम्परा मे हुये थे.. जिसमे उनके पहले मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त भी जैन मुनि हो चुके थे.–

श्री भद्रस्सर्वतो यो हि भद्रबाहु रितिश्रुतः।
श्रुतकेवलिनाथेषु चरम परमो मुनि. ॥

चन्द्रप्रकाशोज्ज्वलसांद्र कीर्त्तिः
श्री चन्द्रगुप्तोऽजनितस्य शिष्यः।
यस्य प्रभावाद्वनदेवता भिराराधितः
स्वस्य गणो मुनीना ॥

तस्यान्वये भूविदिते वभूव यः
पद्मनन्दि प्रथमा भिधान. ।
श्री कोण्डकु दादि मुनीश्वराख्यस्स
त्स यमादुंद्गत चारणार्द्धिः ॥

प्रायः इसी प्रकार का कथन शिला लेख नं० १०८ मे भी वहा पर हैं । इनके कथन और करनो से स्पष्ट है कि वे पद्मनंदि नाम से अधिक प्रख्यात थे और देशीय नाम कोण्डकुंद का श्रुत मधुर नाम ही कुंदकुंद है ।

श्रुतकेवली भद्रवाहु की परम्परा में

भ० कुंदकुंदाचार्य ने स्वयं ही 'बोध-पाहुड' की ६१ वी एव ६२ वी गाथाओ मे अपने को श्रुतकेवली भद्रवाहु की परम्परा का शिष्य बतलाया है और यही बात शिलालेखों मे भी कही गई है । वे गाथायें निम्नलिखित हैं :-

'सद्दवियारो हुओ,
भासा सुत्तसुत्तं जिणं कहियं।
सो तह कहियं णायं,
सीसेण भद्दबाहुस्स ॥६१॥'

अर्थः- जैसा जिनेन्द्र भ० ने उपदेश दिया है वैसा ही भाषासूत्रो मे शब्द विकार को प्राप्त हुआ, और वैसा ही भद्रबाहु के (परम्परा) शिष्य (प्राभृत कर्त्ता) ने जाना और वर्णन किया।'

'बारस अंग वियाणं,
चउदस पुव्व विफल विच्छरणं
सुय णाण भद्दबाहु,
गमयगुरु भयवउ जयउ ॥६२॥'

अर्थ :— 'बारह अंग और अधिक विस्तार वाले चौदह पूर्व के विशेष ज्ञाता श्रुतज्ञानी, गमकगुरु भद्रबाहु भ० जयवंत हो।'

इन दोनों गाथाओ के अर्थ से यह निस्संदेह स्पष्ट हो जाता हैं कि भगवत् कुंदकुंद अपने ज्ञानगुरु के रूप में श्रुतकेवलो भद्रवाहु का ही स्मरण करते हैं, किंतु यह गुरु शिष्य सम्बन्ध परम्परागत है। जैसे शिलालेखीय साक्षी से स्पष्ट है। भ० कुंदकुंद प्राचीन आचार्य होने के साथ ही महाज्ञानी वाचक भी कहलाते थे।

उनके शिष्य सम्राट् शिवकुमार महाराज

भ० कुंदकुंद के एक महान शिष्य सम्राट शिवकुमार महाराज थे। टीकाकारो का कहना है कि स्वामी जी ने अपने प्रायः सभी ग्रथ उनको सम्बोधित करने के लिए लिखे थे। प्रो० चक्रवर्ती ने उनको पल्लववंश के सम्राट् शिवस्कन्द वर्मा

वताया है। जिनके राजदरवार की भाषा प्राकृत थी। 'मायिडावोली' नामक सुप्रसिद्ध नामक ग्रंथ उसी समय का हैं। साराश यह कि भ० कुंदकुंद एक ऐसे महान् आचार्य थे जिनकी सेवा वडे-वडे राजामहाराजा करते थे-यहाँ तक कि स्वयं तीर्थंङ्कर सीमंधर स्वामी ने उनके ज्ञान की प्रशस्तता का उल्लेख समवशरण मे किया था।

कुंदकुंद स्वामी की यह महानता एकमात्र शास्त्र दान के देने और स्वाध्याय तप मे अहर्निश पगे रहने से मिली थी। अतएव प्रत्येक मुमुक्ष का कर्तव्य यह होना चाहिये कि वह जैन ग्रंथो को मुद्रित कराकर वितरण करके ज्ञान प्रभावना करे और नियमित रूप से स्वाध्याय करने का नियम लेवे। इसीलिए दातार महोदय श्रीमान् सेठ घनश्याम दास जैन, जोराहट(आसाम)ने भ० कुंदकुंद

की ये सूक्तियाँ ज्ञान प्रभावना के लिए प्रकाशित कराई हैं।

उनका प्रचार और ग्रंथ रचना

भ० कुंदकुंदाचार्य का सारा साधु जीवन ज्ञानाराधना और ज्ञान मार्ग की प्रभावना मे वीता था। उन्होने संघ मे समय विषमता से आये हुये विकारो का निराकरण बड़े साहस से किया जिससे भाव धर्म की स्थिरता को बल मिला था। इस पुनीत ध्येय की सिद्धि के लिए न जाने उन्होने कितने अपूर्व ग्रन्थों की रचना की थी, यह बताना कठिन है। किन्तु आज उनकी अमूल्य रचनाओ मे निम्नलिखित उपलब्ध है :—

(१) समयसार, (२) पञ्चास्तिकाय, (३) प्रवचनसार, (४) दर्शन प्राभृत, (५) सूत्र प्राभृत, (६) चारित्र प्राभृत, (७) बोध प्राभृत, (८) भाव प्राभृत (९) मोक्षप्राभृत, (१०) लिङ्ग प्राभृत, (११) शील प्राभृत, (१२) रयणसार, (१३) नियमसार और

(१४) वारस अणुवेक्खा ।

इन अपूर्व ग्रंथरत्नो का सिरजन करके आचार्य प्रवर ने धर्म का मार्ग ही चला दिया था । ५२ वर्षों के दीर्घ आचार्य काल मे उन्होने महत्व पूर्ण साहित्य प्रणयन के साथ दूर दूर तक धर्म का प्रचार भी किया था । कहते हैं कि भ० कुंदकुंद ने 'कर्म प्राभृत'(षट्खण्डागम) नामके प्रथम तीन खण्डो की १२ हजार श्लोक परिमाण 'परिकर्म' नामक टीका भी लिखी थी । यह भी कहा जाना है कि उन्होने मुनियों के आचार ग्रंथ 'मूलाचार' को भी रचा था । 'दशभक्ति संग्रह' उन्होने रची कही जाती है ।

इस प्रकार जैनसंघ का यह देदीप्यमान नक्षत्र सदा ही ज्ञानालोक मे चमकता रहेगा । उनके द्वारा प्रणीत से श्रुत ही प्रस्तुत सूक्तियाँ संग्रह की गई हैं ।

सूक्तियों का चयन क्रम ।

प्रस्तुत सूक्तियाँ रत्नत्रय धर्म को लक्ष्यकर

संग्रह की गई हैं मनुष्य को बहिर्दृष्टा न रखकर
अंतर्दृष्टा की ओर ऋजु करना है । भावधर्म
उपादेय है । बारह भावनाओं को उपस्थित करके
चित्तशुद्ध की ओर मुमुक्ष को जगा देना इष्ट है ।
जैन कथावर्त्ता से विविध उदाहरण उपस्थित करके
आचार्य श्री ने मानव को कषायो के कषैले प्रभाव
से बचाने का प्रयास किया है । कितनी करुणा
बुद्धि है उनकी ! उल्लिखित व्यक्तियो की कथायें
जैन कथा साहित्य मे बिखरी मिलती हैं । यदि
संभव हुआ तो अगले संस्करण मे उन कथाओ को
भी देने का प्रयास करेंगे एक गृहस्त अपने धर्म-
कर्तव्य को पहिचान कर अपना आत्म कल्याण
कर सके, इसी ध्येय से प्रस्तुत सूक्तियो का चयन
किया गया है । आशा है, पाठकों को यह रुचिकर
होगी । मूल गाथा के साथ उसके पद्यानुवाद चि॰
वीरेन्द्र जैन साहित्यरत्न कृत दिया गया है ।
जिससे अंग्रेजी विज्ञो के अतिरिक्त हिन्दी पाठक
भी उससे लाभ उठा सकेंगे ।

आभार-प्रदर्शन

अन्त मे हम पूज्य श्री आचार्य कुंदकुंद स्वामी के प्रति अपनी कृतज्ञता पूर्ण श्रद्धांजलि अर्पण करते हैं। साथ ही इस ट्रैक्ट प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देकर प्रकाशन सुलभ किया उन जोरहट (आसाम) निवासी दातर महोदय श्रीमान सेठ श्री घनश्यामदास जी बाकलीवाल के प्रति मिशन कृतज्ञता का भाव प्रकट करता है। उनके सहयोग से ही प्रस्तावना का ठोस कारण उपस्थित हो रहा है।

जिनशासन सदा जयवंत वर्ते, जिससे लोक कल्याण हो, यही भावना है। इति।

विनीत—

[illegible]

जैन भवन अलीगंज (एटा)
१-५-१९६२

स्वामी कुन्दकुन्दाचार्य
की
सूक्तियाँ

The Sayings
of
Swami
Kundakundachayra

मङ्गल-सूक्ति
(Benediction)

काऊण णमुक्कार जिणवरवसहस्स वड्ढमाणस्स
दंसणमंग्गं वोच्छामि जहा कम्मं समासेण ॥

卐

करके नमस्कार जिनवर को,
वृषभदेव को, वर्धमान को।
अनुक्रम से सङ्क्षेप रूप से,
मैं कहता दर्शन सुमार्ग को ॥

卐

Having offered salutations to (omniscient) spiritual conquerors -- the *Jinavaras* -by name Vraṣabha to Varddhamāna I (Swāmi Kundakundā-charya) propound briefly and systematically the path of Truth.

स्वामी कुन्दकुन्दाचार्य

Swāmi Kunda kundāchārya

दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं
तं सऊण सकण्णे दंसण हीणो ण वंदिव्वो ॥

卐

धर्म मूल दर्शन–शिष्यों को,
जिनवर ने उपदेश दिया है।
उसे सुनो अपने कानों से,
दर्शन-हीन + न वंद्य कहा है ॥

卐

The Lord Jinavara has taught to his disciples that the basic root of *Dharma* (Truth) is Right Belief. Hear that truth with your ears open and shut your eyes towards faithless, who is not adorable

---

\+ सम्यक्त्वरहित

सम्मत्तसलिलपवहो णिच्चं हियए पवट्टए जस्स
कम्मं वालुयवरण वन्धुच्चिय णासए तस्स ॥

卐

सम्यक्त्व सुसलिल प्रवाह नित्य,
बहता अंतस्तलमें जिसके।
है कर्म — वालुकावरण पूर्व-
सचित भी नश जाते उसके ॥

卐

The blessed person, in whose heart flows the stream of Right Belief, surely causes the destruction of the bondage of the sand of karmas.

सम्मत्तादो णाणं णाणादो सव्वभाव उवलद्धो ।
उवलद्ध पयत्थे पुण सेयासेयं वियाणेदि ॥

卐

सम्यक दर्शन से ज्ञान, ज्ञान से
सर्वभाव उपलब्ध सहज है ।
पुनः पदार्थ ज्ञान पाकर के,
जाना जाता श्रेयाश्रेय है ॥

卐

The Right Belief causes Right Knowledge, which produces the *Sarvabhava* (cosmic feeling of perfection and equanimity). On attaining to *Sarvabhava* one realises the truth of *Shreya* (i. e. activity beneficial to soul) and its contrary the *Ashreya*, (which produces unpleasant conditions for soul)

छः

सेयासेयाविदण्हू उद्धुद दुस्सील सीलवत्तो वि
सीलफलेणब्भुदय तत्तो पुण लहइ णिव्वाणं ॥

卐

श्रेयाश्रेय विज्ञ ही नाशक सब–
दुश्शील, सुशीलवान है ।
वही शीलफल अभ्युन्नति पा,
फिर पाता वह मोक्षधाम है ॥

卐

Those aspirers who discriminate between *Shreya* (auspicious and beneficial activity) and *ashreya* (non-beneficial and inauspicious one for the soul) are called *'Uddhada-Dusshila'* (Destroyer of Wrong Belief) and *'Shila vanta'* well-established in the spirituality, i. e the real feeling of Soul They raise their souls to higher spiritual sphere and finally attain *Nirvana.*

जीवादी सद्दहण सम्मत्तं जिणवरेंहि पण्णत्तं ।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं ॥

जीव प्रभृति पदार्थ सत श्रद्धा,
है सम्यक्त्व जिनेन्द्र उचारा ।
वह व्यवहार, आत्म श्रद्धा है-
सम्यक दर्शन निश्चय द्वारा ॥

卐

From the practical point of view the great Lord Jina has described the true faith of the principles of *Jiva* (Soul) etc. (i. e. *Ajiva* non-soul, *Ashrava*-Inflow of karamas *Bandha* -bondage of karmic moliculles, *Samvara* - stoppage of karmas, *Nirjara* - Sheddling off of karmas, and *Moksa* (Liberation) to constitute the Right Belief in its practical form, while from the real point of view the true belief of the natural condition i e. reality of Soul is real Right Belief.

जं सक्कइ तं कीरइ जंच ण सक्केइ तंच सद्दहणं
केवलिजिणेहिं भणियं सद्दहमाणस्स सम्मत्तं ।।

卐

जितनी शक्ति करो उतना ही,
शक्ति परे की श्रद्धा करना ।
श्रद्धावान सुसमकितधारी,
यह केवली जिनप का कहना ।।

卐

What is possible to do for the good of soul, do perform that much only And the rest of (right conduct) which seems not easy to observe (in the particular circumstantial condition of the aspirer), he should keep his belief entact for that -(he should not be faithless because) the Lord Jina has declared the faithful to possess the Right Belief.

णवि देहो वंदिज्जइ ण वि य कुलो ण वियजाइसंजुत्तो
को वदमि गुणहीणो ण हु सवणो णेय सावओ होइ

卐

न तो वध है देह, न कुल है,
और न जाति युक्त वंदित है ।
कौन वन्दता गुण-विहीन को,
निरगुण श्रमण न श्रावक भी है ॥

卐

Neither the physical body, nor the family or caste is adorable. Who could honour those people who are devoid of merits? They are neither a *Shramana* (monk) nor a *Shravaka* (layman)!

णाणं णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं
सम्मत्ताओ चरण चरणाओ होइ णिव्वाण ॥

卐

ज्ञान मनुजका सार सार है, —
निश्चय नर का सम्यक दर्शन ।
सम्यक दर्शन से चरित्र है,
औ' चरित्र से मोक्ष-सदन घन ॥

卐

The knowledge is the essence for human beings, but in real sense it is abiding in Right Belief (Knowledge without Right Belief is misleading and worthless). The Right Belief leads man to observe the rules of conduct in a right way And that pure conduct awards him the bliss of Nirvāna ! +

+These nine gāthās are taken from '*Darshana-Pāhuda*'.

अरहंत भासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
सुत्तत्थमगारात्थं सवणा साहंति परमत्थं ॥

卐

जिसे कहा अरहन्त देव ने,
औ' गणधर ने सम्यक् गूँथा।
सूत्रार्थ श्रमण मार्गण करते,
साधते सहज परमार्थ यथा ॥

卐

The scripture called '*sutra*' has been propounded by *Arhanta* (the omniscient Teacher) and that has been recorded by the holy *Ganadharas* (Apostles) in book-form systematically. That holy *Sutra* is the light of the path to *Parmartha* (i. e. *Nirvana*).

सुत्तम्मि जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि।
सूई जहा ससुत्ता णासदि सुत्ते सहा णो वि ।।

卐

सूत्र प्रवीण नाश कर देता,
भव में है वह भवोत्पाद का।
सुई असूत्र नष्ट ज्यों होती,
सूत्र सहित कब डर खोने का ।।

卐

The aspirer of truth who acquires the knowledge of *Sutras* (Scriptures containing the teachings of an omniscient Teacher) is able to destroy the (misery of) transmigration ; as a needle with *Sutra* (thread) is never lost; while that without thread is *lost* easily ! (Therefore acquire knowlege of the *Sutras*). ×

× Taken from '*Sutta-pahuda*'

जं जाणइ तं णाणं जं पिच्छइ तं च दंसणं भणियं
णाणस्स पिच्छियस्स य समवण्णा होइ चारित्तं

卐

जो जाने वह ज्ञान कहाता,
जो पहिचान करे वह दर्शन ।
ज्ञान और दर्शन संयोग से,
होता है चारित्र प्रवर्तन ॥

卐

The knowing activity signifies knowledge, while discerning of substances, denotes perception (which is full of right faith). And the both of them i.e knowledge and faithful perception produce conduct.

जिणणाण दिट्ठिसुद्ध पढमं सम्मत्तचरणचारित्त
विदिय संजमचरणं जिणणाणसदेसिय तं पि ॥

जिन ज्ञान दृष्टि से शुद्ध प्रथम,
सम्यक्त्वाचरण चरित्र कहा।
दूसरा सयमाचरण चरित्,
जिन-ज्ञान-प्रभासित जोकि रहा ॥

卐

(The Right Conduct is of two kinds). The first and foremost of them is *Samyaktva charana* (i. e. spiritual conduct, in which aspirer manifests his faith and knowledge of spirit by self-absorption), which is sanctified by the (infinite) knowledge and perception of Lord Jina. The other kind of Right Conduct is called *Samyamacharana* (observance of rules of self-control) which is also propagated according to the wisdom of Lord Jina.

णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिछा अमूढदिट्ठीय
उवगूहण ठिदिकरण वच्छल्ल पहावण य ते अट्ठ
निःशंकित ओ' निःकांक्षित ओ' निर्विचिकित्सा अमूढद्रष्टिम्
उपगूहन थितिकरण वत्सलता, ओ' प्रभावना सम्यक्त्वष्टम्

(For the clarity and solidarity in the observance of the inner conduct of *Samyaktva*, i e. Right Belief, the following eight limbs of it are most essential for observance): 1 *Nissamkita*, i. e. Fearless mental attitude without any doubt, 2 *Nihkamchhita*, i e. desireless-ness, 3 *Nirvichkitsa*, i. e. freedom from aversion to or regard for body; 4. *Amudadristi* freedom from inclination for the path, 5 *Upaguhana*, redeeming the defects of ineffective believers; 6. *Stithikarana*, sustaining souls in-right conviction 7. *Vatsalya*, loving regard for pious persons and 8 *Prabhavana*, publishing of Jaina doctrines.

उच्छाहभावणासं पसंस सेवा सुदंसणे सद्धा।
ण जहदि जिणसम्मत्तं कुव्वंतो णाण मग्गेण ॥

卐

सत्पथुत्साह भाव है सस्तुति,
सेवा श्रद्धा सद्दर्शन में।
जिन-मत श्रद्धा सम्यक्त्व न वह,
तजता दृढता सुज्ञान पथ में ॥

卐

The aspirer in whom inner feeling of enthusiasm for the (glory of the) Way of Truth –*Jnānamārga*- is awakened and whose heart is saturated with the holy aspirations regarding prayer, service and faith, he never swerves from the path of Right Belief.

सत्तरह

अण्णाणं मिच्छत्तं वज्जहि णाणे विसुद्ध सम्मत्ते ।
अह मोह सारभ परिहर धम्मे अहिसाए ॥

卐

अज्ञान मिथ्यात्व विडारे तू—
सम्यक् ज्ञान और दर्शन से ।
तथा मोह औ' समारम्भ भी,
परिहर धर्म अहिंसा-मय से ॥

卐

Destroy nescience and wrong belief by Right Knowledge and Holy Spiritual Belief. And conquer active attachment- *Moha*--by the religion of Ahinsa (non-violence and harmony).

अठारह

एए तिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स मोहरहियस्स
नियगुणमाराहंतो अचिरेण वि कम्म परिहरइ

卐

यही भाव त्रय मोह रहित जो—
उसी जीव के निश्चय होते।
निज गुण आराधन से सुजीव—
हैं शीघ्र कर्म-हत हो जाते ॥

卐

The abovementioned three feelings (of Right Belief, Right Knowledge and Right Conduct) are only attainable in whole by an aspirer void of attachment. He having engaged himself in the meditation of his spirit destroys *karmas* in no time!

दुविहं संजमचरणं सायारं तह हवे णिरायारं।
सायार सग्गंथे परिग्गहा रहिय खलु णिरायारं॥

卐

दो भाँति सयमाचरण रहा-
सागार और वह निरागार
सागार ग्रन्थियुत के होता-
खलु ग्रन्थि हीन के निरागार॥

卐

The other kind of *Samyamacharana* conduct is of two kinds: (1) the one pertaining to householders and (2) the other that of houseless monks The householders have homely possessions, while the monk is devoid of all possessions.

पचेवरगुव्वयाइ गुणव्वयाइं हवंति तह-तिण्णि ।
सिक्खावय चत्तारि य सजमचरण च सायारं ॥

卐

सब पाँच अणुव्रत हैं होते,
तथा तीन गुणव्रत हैं माने ।
और चार शिक्षाव्रत मिलकर,
सागार संयमाचार बने ॥

卐

The (outer) *Samyama*(right conduct characterised by self-control)of an householder consists of five *Anu-vratas* (minor vows of Ahinsā, Truth, Non- theft, Chastity and Control of desires),three *gunavratas*(special vows relating to the limitation of daily work, food etc)and five *Shikshavratas* (disciplinary vows), i. e (An householder observes 12 vows in all).

अण्णाणं मिच्छत्तं वज्जहि णाणे विसुद्ध सम्मत्ते ।
अह मोह सारभं परिहर धम्मे अहिसाए ॥

卐

अज्ञान मिथ्यात्व विडारे तू—
सम्यक् ज्ञान और दर्शन से ।
तथा मोह औ' समारम्भ भी,
परिहर धर्म अहिंसा-मय से ॥

卐

Destroy nescience and wrong belief by Right Knowledge and Holy Spiritual Belief And conquer active attachment- *Moha*--by the religion of Ahinsa (non-violence and harmony).

एए तिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स मोहरहियस्स
नियगुणमाराहंतो अचिरेण वि कम्म परिहरइ

卐

यही भाव त्रय मोह रहित जो—
उसी जीव के निश्चय होते।
निज गुण आराधन से सुजीव—
हैं शीघ्र कर्म-हत हो जाते ॥

卐

The abovementioned three feelings (of Right Belief, Right Knowledge and Right Conduct) are only attainable in whole by an aspirer void of attachment He having engaged himself in the meditation of his spirit destroys *karmas* in no time!

दुविहं संजमचरणं सायार तह हवे णिरायारं।
सायार सग्ग थे परिग्गहा रहिय खलु णिरायारं॥

卐

दो भाँति संयमाचरण रहा-
सागार और वह निरागार
सागार ग्रन्थियुत के होता-
खलु ग्रन्थि हीन के निरागार ॥

卐

The other kind of *Samyamacharana* conduct is of two kinds: (1) the one pertaining to householders and (2) the other that of houseless monks The householders have homely possessions, while the monk is devoid of all possessions.

पचेवणुव्वयाइ गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि ।
सिक्खावय चत्तारि य संजमचरणं च सायारं ॥

卐

सब पाँच अणुव्रत हैं होते,
तथा तीन गुणव्रत हैं माने ।
और चार शिक्षाव्रत मिलकर,
सागार संयमाचार बने ॥

卐

The (outer) *Samyama*(right conduct characterised by self-control)of an householder consists of five *Anu-vratas* (minor vows of Ahinsā, Truth, Non- theft, Chastity and Control of desires),three *gunavratas*(special vows relating to the limitation of daily work, food etc)and five *Shikshavratas* (disciplinary vows), i. e (An householder observes 12 vows in all).

थूले तसकायवहे थूले मोषे अदत्तथूले य ।
परिहारो परमहिला परग्गहारम्भ परिमाण ॥

卐

छोड स्थूल त्रस घात, स्थूल मृष-
त्याग, अदत्त द्रव्य लेना मत ।
परिहर परतिय और परिग्रह,
परसीमित ये पंचाणुव्रत ॥

卐

The abstinence from the gross killing of movable living beings and from speaking a gross lie, non-acceptance of things belonging to others, and the avoidance of the company of ladies(other than one's wife in privacy), and putting limitations to one's possessions(by controlling desire, constitute the five minor vows of an householder)

दिसिविदिसमाण पढमं अणत्थदंडस्स वणंजु विदियं।
भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि ॥

卐

प्रथम दिशा विदिशा की सीमा—
अनर्थ दण्ड का त्याग दूसरा ।
भोगोपभोग सीमा तृतीय—
इस भाँति तीन गुणव्रत धारा ॥

卐

The limitation(of one's activities) in every direction (of east, west, north and south, upwards, downwards and their corners)is the first *gunavrata* called *Disa vidisa-mana*. The *Anartha-danda-tyaga*, i. e. Avoidance of useless & meaningless activities, and *Bhogopabhoga-mana* i.e. limit of food and enjoyment etc. make all the three *gunavratas*.

सामाइयं च पढम विदियं च तहेव पोसहं भणियं
तइय च अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते

卐

सामायिक पहला शिक्षाव्रत —
दूसरा सु-प्रोपध अभिभाषित ।
तीसरा अतिथि सत्कार अन्त में-
चौथा है सल्लेखन व्रत ॥

卐

The four *Sikṣāvratas* are as follows: (1)*Sāmāyika* i e performance of meditation for equanimity three times daily (2)*Proṣadha*, i.e. observance of fast on the 8th and 14th. auspicious days of each fortnight;(3)*Atithi-satkāra* i e entertaining and giving alms to *Nirgrantha S'ramaṇas*(monks) and (4)*Sallekhanā*, i. e observance of rules pertaining to death in the end.

णाणगुणेहि विहीणा ण लहंते ते मुइच्छिया लाह।
इय णाऊं गुणदोस त सण्णाण वियाणेहि ॥

卐

गुण ज्ञान विहीन कभी भी है—
पा पाता नहीं स्व-इच्छा-फल।
गुण दोष जानने को इसविधि—
जानो सत्सम्यक् ज्ञान धवल ॥

卐

Since the aspirer who is wanting in the right knowledge, never gains his desired goal, it is necessary that he should acquire right knowledge, sothat he may be able to discriminate between merits and demerits.

थूले तसकायवहे थूले मोपे अदत्तथूले य ।
परिहारो परमहिला परिग्गहारम्भ परिमाण ॥

卐

छोड स्थूल त्रस घात, स्थूल मृष-
त्याग, अदत्त द्रव्य लेना मत ।
परिहर परतिय और परिग्रह,
परिसीमित ये पचाणुव्रत ॥

卐

The abstinence from the gross killing of movable living beings and from speaking a gross lie, non-acceptance of things belonging to others, and the avoidance of the company of ladies(other than one's wife in privacy) and putting limitations to one's possessions(by controlling desire, constitute the five minor vows of an householder).

दिसिविदिसमाण पढमं अणत्थदंडस्स वणंजु विदियं
भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि ॥

卐

प्रथम दिशा विदिशा की सीमा—
अनर्थ दण्ड का त्याग दूसरा ।
भोगोपभोग सीमा तृतीय—
इस भाँति तीन गुणव्रत धारा ॥

卐

The limitation (of one's activities) in every direction (of east, west, north and south, upwards, downwards and their corners) is the first *gunavrata* called *Disa vidisa mana*. The *Anartha-danda-tyaga*, i. e. Avoidance of useless & meaningless activities; and *Bhogopabhoga-mana* i.e limit of food and enjoyment etc. make all the three *gunavratas*.

सामाइयं च पढम विदियं च तहेव पोसहं भणियं
तइयं च अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते

卐

सामायिक पहला शिक्षाव्रत —
दूसरा सु-प्रोषध अभिभाषित।
तीसरा अतिथि सत्कार अन्त में-
चौथा है सल्लेखन व्रत ॥

卐

The four *Siksavratas* are as follows: (1)*Samayika* i e performance of meditation for equanimity three times daily (2)*Proṣadha*, i.e. observance of fast on the 8th and 14th. auspicious days of each fortnight;(3)*Atithi-satkara* i e entertaining and giving alms to *Nirgrantha S'ramaṇas*(monks) and (4)*Sallekhana*, i. e observance of rules pertaining to death in the end.

णाणगुणेहि विहोणा ण लहंते ते सुइच्छियं लाहं
इय णाऊं गुणदोसं त सण्णाण वियाणेहि ॥

卐

गुण ज्ञान विहीन कभी भी है—
पा पाता नहीं स्व-इच्छा-फल ।
गुण दोष जानने को इसविधि—
जानो सत्सम्यक् ज्ञान धवल ॥

卐

Since the aspirer who is wanting in the right knowledge, never gains his desired goal, it is necessary that he should acquire right knowledge, sothat he may be able to discriminate between merits and demerits

चारित्तसमारूढो अप्पासु परं ण ईहए णाणी ।
पावइ अइरेण सुहं अणोवमं जाण णिच्छयदो ॥

卐

चारित्रारूढ, न आत्मा में—
करता इच्छा पर की ज्ञानी ।
पाता शाश्वत सुख अनुपम वह—
जानो यह निश्चय विज्ञानी ॥

卐

The wise who minutely observes the right conduct never desires for outer cravings, but having remained in the (miditation) of his soul acquires incomparable happiness.+

+These 13 gathas are taken from '*Charitra-Pahuda*'

जह ण वि लहदि हु लक्खं रहिओ कंडस्स वेज्झय विहीणो ।
तह ण वि लक्खदि लक्खं अण्णाणी मोक्खमग्गस

卐

धनुष बाण बिन कोई वेधक-
ब्यों न प्राप्त करता स्व लक्ष्य को ।
त्यों अज्ञानी प्राप्त न करता-
शिव-पन्थ लक्ष्य परमात्मा को ॥

卐

Since a bowman having no arrow could not gain an archer's experience of shooting the aim in view, like-wise the aspirer of truth having no right Knowledge, could not realise the Godhead, which is the aim for achievement, in the way of Liberation.

णाण पुरिसस्स हवदि लहदि सुपुरिसो वि
विणयसंजुत्तो।
णाणेय लहिद लक्खं लक्खंतो मोक्खमग्गस्स॥

卐

ज्ञान पुरुष के होता लेता,
लाभ सत् पुरुष-विनय युक्त जो।
लक्ष्य ज्ञान से सुलभ लखता,
मोक्ष मार्ग परमात्मन् पद को॥

卐

The (Right) Knowledge is attainable by (all) men; but it can be achieved only by those persons who are humble and have reverence for wise individual. The individual equipped with that Knowledge becomes able to see the target of *Mokṣa-marga*, i.e. the Godhead!

मइधणुहं जस्स थिरं सुदगुण बाणा सुअत्थि रयणत्तं
परमत्थवद्ध लक्खो ण वि चुक्कदि मोक्खमग्गस्स

卐

सुमति धनुष थिर, श्रुत प्रत्यंचा,
सार्थक बाण सुरत्नत्रय का।
चूक नहीं सकता वह किंचित,
परमार्थ लक्ष्य ही है जिसका ॥

卐

The aspirer of Truth who is keeping his bow of mental-knowledge unswerving, puts on it the string of scriptural knowledge and shoots from it the arrows of *Ratnatraya* (three jewels of Right Belief, Right Knowledge and Right Conduct) having realised the perfect aim of Godhead, never swerves from the path of Liberation.

धम्मो दयाविसुद्धो पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्तां ।
देवोववगयमोहो उदययरो भव्वजीवाणं ॥

卐

धर्म दया से है निर्मल जो,
सर्व परिग्रह त्याग प्रव्रज्या ।
देव वही जो विगत मोह है,
उदय भव्य का करे जो क्रिया ॥

卐

The religion is pure compassion and ordination of monkhood is void of all kinds of possessions The (worshipable) deity is (ever) without *moha* (i e. infatuation and attachment), who proves a source of progess (for the Right Believer).

वयसम्मत्तविसुद्धे पचेंदियसंजदे णिरावेक्खे ।
ण्हाएउ मुणी तित्थे दिक्खा-सिक्खासुण्हाणेण ॥

卐

व्रत सम्यक्त्व विशुद्ध पचेन्द्रिय-
संयत पूरित निरपेक्षा से ।
साधु नहाओ आत्मतीर्थ में-
शिक्षा दीक्षा के नहान से ॥

卐

(The aspirer of truth, who is)clean (by the observance of) vows and right-belief, is controlling his five senses and is *nirpeksa*(i e having no desire for worldly achievements) baths in the blessed *Tirtha*(i e sacred place)of his own Soul by observing the rules of ordination and teachings.(i. e. There is no good of soul to have physical bath only in Ganges and Godavari).

ज णिम्मल सुधम्मं सम्मत्तं संजम तवं णाणं ।
तं तित्थे जिणमग्गे हवेइ जदि सतिभावेण ।।

卐

सत् निर्मल सुधर्म औ' सम्यक्—
दर्शन सयम तप सुज्ञान ये।
सत्य तीर्थ हैं जैन-मार्ग में—
शान्त भाव युत रहें अगर ये ॥

卐

In the blessed Way of Jinas(i. e. Jainism) the right *Tirtha* (sacred place) is that which is sanctified by the good righteousness, right belief, self-control, penance and right knowledge. And that too only when observed with *Shanti-bhāva* (i. e. the feeling of peaceful equanimity).

दंसण अणंत णाणो मोक्खो णट्टट्ठकम्मबंधेण ।
णिरुवम गुणमारूढो अरहंतो एरिसो होई ॥

卐

जो अनन्त दर्शन सुज्ञान युत,
अष्ट कर्म बन्धन हत शिव मय ।
निरुपम गुण में समारूढ वह,
होता ईदृश अर्हत् निश्चय ॥

卐

(The aspirer of Truth having observed the Ratnatraya i. e three jewels of Right Belief, Right Knowledge and Right Conduct) destroys the bondage of eight karmas to become liberated and acquires infinite perception and Knowledge. He attains such a holy status of incomparable *Arhanta*.

जरवाहिजम्ममरणं चउगइगमणं च पुण्य पावं च
हंतूण दोसकम्मे हुउ णाणमय च अरहतो ॥

卐

जरा व्याधि औ' जन्म-मरण भी-
गमन चार गति पाप पुण्य भी ।
नाशे दोष कर्म सब जिसने,
हुआ ज्ञानमय अर्हन् वह ही ।

卐

The Arahant is(he who has)destroyed(the evils of)old age and bodily ailments, (miseries of) four kinds of worldly conditions and merit and demerit along with all other blemishes(adverse to soul) and thereby has gained the status of perfect knowledge ×

× From '*Bodha-pahuda*'

भावविसुद्धिणिमित्ता वहिरगंथस्स कीरए चाओ
वाहिरचाओ विहलो अब्भंतरग थ जुत्तस्स ॥

卐

भाव विशुद्ध निमित्त सु करने,
त्याग वाहरी सभी ग्रन्थि का।
वाह्य त्याग पर निष्फल होता,
आभ्यान्तर तम ग्रन्थि-युक्त का ॥

卐

The abstinence from having outer possessions is meant for the purity of inner feelings. If inner feelings are spoiled (with the dirt of attachment and avrsion) then the outer abstinence is worthless.

भावहिरओ ण सिज्झइ जइ वितवं चरइ कोडि-
कोडीओ ।
जम्मंतरइ वहुसो लंवियहत्थो गलियवत्थो ॥

卐

भाव रहित न सिद्धि हो, यद्यपि—
तपता कोटि कोटि तप उटकर ।
जन्म जन्म में गलित वस्त्र या—
वहुविधि कर लम्बायमान कर ॥

卐

(The person whose) feeling is not saturated with the spirit of renunciation could not attain liberation, inspite of his observing penance for millions and millions of years after discarding all clothes and lengthening his arms (for the sake of meditation) (i e. the outward show of renunciation is worthless).

जाणहि भावं पढमं लिगेण भावरहिएण ;
पथिय ! सिवपुरि पंथं जिण उवइट्ठं पयत्तेण ॥

卐

जानो भाव प्रथम, क्या होगा—
भाव-हीन उस द्रव्य लिंग से ।
पथिक! मोक्ष-पुर-पथ जिनवर ने-
है उपदेश किया प्रयत्न से ॥

卐

O the Wayfarer of the way of *Shivapur* (the abode of Liberation)! remember the Lord Jina's foremost teaching is that you should realise the spirit of *Dharma* first The outer conditions regarding *Dharma* without its real spirit are of no value and useless.

भीसण णरयगइ ए तिरियगइए कुदेवमणुगइए।
पत्तोसि तिव्वदुक्खं भावहि जिण भावणा जीव

卐

भीषण नर्क कुगति तिर्यक गति-
औ' कुदेव औ' मानुष गति में।
पाए तीव्र क्लेश हे प्राणी!
भाओ जिन भावना हृदय में॥

卐

O Soul! you have experienced the bitterest of miseries of the worldly conditions in hell and among the animals and the *devas* (celestial beings) and men of inferior classes. Now awaken your self and acquire the spirit of pure soul (so that you may end your miseries of world!)

पोओसि थणच्छीरं अणंत जम्मंतराइं जणणीणं।
अण्णाण्णाण महाजस। सायरसलिलाहु अहिययरं

卐

पी डाला पय स्तन से तूने,
अनन्त जन्मों में माँ का है।
अन्य अन्य का, अहे महाजस !
सागर जल से जो ज्यादा है ॥

卐

O the great soul ! just think of the (quantity) of milk which you have drunk from the breasts of mother in different births if accumulated, it will be greater (in qnantity) than the water of oceans !

तुह मरणे दुक्खेण अण्णण्णाणं अणेयजणणीणं।
रुण्णाण णयणणीर सायरसलिलाहु अहिययर ॥

卐

तव मरण दु:ख से अन्य अन्य—
जन्मों की अगणित जननी जो।
रोई जिनके नयन नीर-कण—
जलधि सलिल से भी अतिशय जो॥

卐

(Then O aspirer! think of the number of) deaths which (your soul has experienced) in various births and the pain of which has caused your various mothers to weep in those births: if the wailing tears (falling from the) eyes (of those mothers be collected) they will surpass the (quantity of the) water of an ocean! (So why you remain entagled in worldly attachments?)

भवसायरे अणंते छिण्णुज्झिय केसणहरणालट्ठी
पुंजय जहको वि जए हवदि य गिरिसमधिया रासी

卐

इस अनन्त भव-सागर में जो,
छिन्न केश नख नाल अस्थियाँ।
पुञ्जीभूत करे कोई सुर,
तो गिरि से हों अधिक राशियाँ॥

卐

In this infinite ocean of worldly transmigration, O soul, (you have occupied many and many bodies) and have thrown (big quantities of) hairs, nails. bones etc. (pertaining to them. Now just ponder a bit over it that) if a *deva* (semi-god) takes a fancy to collect them, their pile will surpass (the height of) great Meru ! (So how you feel attached to] eteriorating physical body ?)

जलथलसिहि पवणवरगिरिसरिदरितरु वणाइ सव्वत्थ ।
वसिओसि चिरकाल तिहुवणमज्झे अणप्पवसो ॥

卐

जलथल अनल अनिल नभ गिरि नद-
दरी वृक्ष वन सर्वक्षेत्र में ।
चिर काल रहा हूँ आनाश्रित-
अन आत्मा वश इस त्रिभुवन में ॥

卐

Due to the slavery fo nescience, O Soul. you (have been wandering in the) three worlds since eternity and (in this long journey you have been) living in water and on earth, in fire and air. on sky or hill, in river or cave and on tree or in forest. (So now is the chance for you to conquer nescience and be free !).

गसियाइं पुग्गलाइ भुवणोदरवत्तियाइं सव्वाइं
पत्तोसि तो ण तित्ति पुणरुत्तं ताइं भुंजतो ।।

卐

लोक उदर में वर्तन करता—
ग्रसता मुख में सब पुद्गल को ।
उन्हें प्राप्त कर पुनः भोगता—
पर न प्राप्त कर सके तृप्ति को ।।

卐

O Jiva ! you have grasped almost all the particles of matter scattered all over the universe and swallowed them again and again, but you have not become satiated. (So now be satisfied by having the pleasing taste of your spiritual bliss !)

तिहुयणसलिलं सयल पीयं तिण्हाइ पोडिएण तुमे
तो वि ण तण्हाछेओ जाओ चितेहि भवमहणं ॥

卐

तृष्णा से पीड़ित हो तुमने –
तीन लोक का जल पी डाला ।
पर न मिटी वह तृषा अतः अब –
भव नाशक रत्नत्रय मन ला ॥

卐

O Soul ! (just remember your) craving, which made you to drink the whole water of all the worlds; but inspite of that your thirst is not satiated. Therefore now absorb yourself in the observance of (Ratnatraya Dharma, so that) you may destroy the (misery of transmigration).

अप्पा अप्पम्मि रओ सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो
जाणइ तं सण्णाणं चरदिह चारित्तमग्ग त्ति ॥

卐

आत्मा निजात्म में जब रमता—
जीव प्रकट सम्यक्दृष्टी हो ।
सम्यक् ज्ञान प्राप्त करता वह—
सम्यक चरित् मार्ग अनुचर हो ॥

卐

(From the real point of view), the soul who remains absorbed in (the reality of) Soul becomes a true Samyagdristi (i e Right--believer). The knowing of pure soul by soul is right--knowledge and when the soul remains engaged in the natural function of soul. that is real right conduct. (O aspirer ! realise and experience the reality of Soul !)

अण्णे कुमरणमरण अणेय जम्मतराइं मरिओसि
भावहि सुमरणमरण जरमरणविणासणं जीव ।।

卐

अन्य कु-मृत्यु बहु मरण किये हैं—
अगणित जन्म-जन्म में मर कर ।
सुमरण मरण भाव से करके—
जीव ! जन्म औ' मरण नाशकर ।।

卐

In many many births, O Soul, you have suffered the pangs of good or bad death. Now you perform such an (efficacious) death that you may not have to suffer it again !

एक्केक्कंगुलि वाहो छण्णवदी होंति जाण मणुयाणं।
ते अवसेसे य सरीरे रोया भण कित्तिया भणिया ॥

卐

एक-एक अंगुल पर मानव—
तन में व्याधि छ्यानवे जानो ।
शेष देह में कितने कह तू—
हैं रोग भरे कुछ अनुमानो ॥

卐

In this body there exist ninety six ailments at every inch now think, how many more there could be in the whole body !

ते रोया वि य सयला सहिया ते परवसेण पुव्वभवे
एवं सहिस महाजस किं वा बहुएहिं लविएहिं ॥

卐

तूने सकल व्याधियाँ सहली,
बहुत पूर्व भव में परवश हो ।
वही सहोगे मूढ महाजस !
क्या बहुत कहे का लाभ कहो ?

卐

O the great fortnuate one ! you have suffered all the ailments named above in your previous births. (Will you be so foolish as to experience them again and again ?

सिसुकालेयअयाणे असुई मज्झम्मि लोलिओसि तुमं।
असुई असिया वहुसो मुणिवर! वालत्तपत्तेण ।

卐

बाल्य काल में अज्ञानी हो-
अशुचि बीच लोटे हो तुम तो।
अशुचि भक्ष्य है किया बहुत-सा-
शिशु वय में मुनिवर तुमने तो॥

卐

O Muni! just remember that while a baby you remained lying in filth. And when you attained boyhood you ate such dirty things (which were not edible)

भाव विमुत्तो मुत्तो ण य मुत्तो बंधवाइ मित्तेण
इय भाविऊण उज्झसु गथं अब्भंतरं धीर ॥

卐

भाव विमुक्त मुक्त हैं और न-
बन्धु मित्र से मुक्त, मुक्त वह ।
इसी भाव को समझ धीर हे-
अंतरंग वासना त्याग रह ॥

卐

O the, wise ! remember that that person is really liberated who feels liberated from within mere forsaking the physical relations of brotherhood and friendship do not make him liberated Therefore you should clean your heart (so that you may become really liberated !)

देहादि चत्तसंगो माणकसाएण कलुसिओ धीर !
अत्तावरोण जादो बाहुवली कित्तिय काल ॥

卐

देहादिक से त्याग परिग्रह,
मान कषाय कलुषयुत भाई।
बहुत काल तक आतप तप तप-
बाहुबली ने सिद्धि न पाई ॥

卐

Oh, just see to Bāhubali, who was full of patience and gave up attachment of body etc.; but inspite of that he remained engrossed in conceit and therefore could not attain liberation for a considerable time !

महुगिगो णाम मुणी देहहारादि चत्तवावारो ।
सवणत्तण ण पत्तो णियाण मित्तेण भवियणुय

卐

मधुपिंग नाम के मुनि ने तन—
भोजन व्यापार त्याग कर रख ।
पर भाव श्रमणपन पा न सके—
मात्र निदान हेतु भवि नत लख ॥

卐

There was a monk by name Madhupingal, who inspite of renouncing the (attachment of) body and hunger, committed the mistake of making a *Nidana* (a particular desire for the future) and therefore could not achieve the real worth of Shramanahood !

अण्णं च वसिट्ठमुणि पत्तो दुक्खं नियाणदोसेण ।
सो णत्थि वासठाणो जत्थ ण दुरुदुल्लियो जीवो ॥

卐

और अन्य भी वशिष्ट मुनि ने,
पाए क्लेश निदान दोष वश ।
भला कौन थल जहाँ लोक में,
जीव भ्रमण में तू न रहा वस ॥

卐

Likewise there once flourished a monk by name Vashistha, who also suffered miseries for the sake of a *nidana*. Just ponder that where not in this universe this soul has reached to make his timely sojourn

दंडयणयर सयल डहिओ अब्भंतरेण दोसेण।
जिणलिगेण वि वाहू पडिओ सो रउरवे णरये ॥

卐

दण्डक नगर सकल दह डाला—
आभ्यन्तर के दोष दाव में।
जिन लिंगी हो वाहु मुनी वह—
गिरे पडे रौरव कु-नरक में ॥

卐

Once there was a *muni*(monk)by name Vāhu, who inspite of being a naked recluse, became a prey of anger and destroyed the whole city Dandakanagar. As a result he went to sruffer the miseries of the *Rourava* hell.

अवरो विदव्वसवणो दमणवरणाणचरणपव्भट्ठो
दीवयणुत्ति णामो अणतसंसारिओ जाओ ॥

卐

अन्य और भी द्रव्य श्रमण है —
दर्शन ज्ञान चरित्र भ्रष्ट जो।
दीपायन मुनि नाम कि जिनका—
जन्म मरण चिर लोक भ्रमित जो ॥

卐

Likewise there appeared many Shramanas, as Dviṛayana, who lived outwardly as monk, but having been swerved from the right path of belief, knowledge and conduct, have suffered the miseries of infinite worldly transmigration

भावसमणो य धीरो जुवईजणवेढ्ढिओ विसुद्धमई
णामेण सिवकुमारो परीत्तससारिओ जादो ॥

卐

भाव श्रमण थे धीर, युवतिगण-
से परिवेष्टित विशुद्ध मति जो।
नाम कि जिनका शिव कुमार था-
छूटे लोक भ्रमण से थे जो ॥

卐

(We hail the great monk)Shivakumāra, who was a *Bhāvasrmana* and who conquered the *samsara* (worldly condition of transmingration), although many young ladies surrounded him (and tried to attract him towards worldly pleasures by their allurements)

छप्पन

केवलि जिण पण्णत्तं एयादस अ ग सयलनुयणाणं

पढिओ अभव्वसेणो ण भावसवणत्तणं पत्तो ।।

卐

केवली सुजिन से सु-निरूपित,

एकादशांग सब श्रुतज्ञान ।

मुनि अभव्यसेन उसे पढ़कर —

भी भाव श्रमणपन सके पा न ।

卐

Although the monk by name Abhavayasena studied the eleven *anga-sutras*, which make the whole of *Shrutajnana* (Scriptural Knowledge) yet inspite of (his immense literal knowledge)he could not attain *Bhava-Shramanaship*

सत्तावन

तुसमासं घोसतो भावविसुद्धो महाणुभावो य ।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडं जाओ ॥

卐

तिल तुष मास-भिन्न रट रट कर–
भाव-विशुद्ध महानुभाव जो ।
था जिनका शिवभूति नाम शुभ-
केवल ज्ञानी प्रकट हुये जो ॥

卐

(While on the other hand there was a monk) by name Shivabhuti, (who although was not fortunate to be able to study scriptures) yet he acquired omniscience simply by repeating the aphorism "*Tuṣa-ma-'sa-bhinna*" and thereby gained the purity of heart

देहादिसगरहिओ माणकसाएहि सयल परिचत्तो।
अप्पा अप्पम्मि रओ स भावलिंगी हवे साहू ॥

卐

देहादि सग दूर तथा-
अभिमान कषाय त्यागकर सब।
जो आप आत्म में रहे लीन-
वह साधु भाव लिंगी नीरव ॥

卐

(That aspirer is a true wayfarer called) *Bhava-lingi*, who having acquired the feeling of detachment from body etc and having conquered the passion of conceit, remains absorbed in his own soul.

एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसण लक्खणो ।
सेसा मे वाहिरा भावा सव्वे सजोगलक्खणा ॥

卐

मेरा शाश्वत एक आतमा—
ज्ञान व दर्शन लक्षण जिसका ।
शेष सभी मम बहिर्भाव हैं—
पर सयोगिक लक्षण सब का ॥

卐

(The true aspirer regards that) his soul is only one (of its kind) with the characteristics of Knowledge and Perception. The remaining feelings of outer concerns are acquired from without and are knowable by their outer concerns.

भावेह भावसुद्धं अप्पा सुविसुद्धणिम्मल चेव ।
लहु चउगइ चइऊण जइ इच्छसि सासय सुक्खं ॥

卐

भावों से कर भाव शुद्धि को –
आत्म विशुद्ध और निर्मल हो ।
शीघ्र चतुर्गति छूटे यदि यह–
इच्छा तो लभ शाश्वत सुख को ॥

卐

O aspirer ! if you are desirous of having the eternal happiness, then ever meditate upon the pure sanctity of soul, and thereby clean your heart (from the dirt of worldly passions) and destroy the transmigration of four worldly births (i. e., human, celestial, animal and hell).

पढिएण त्रि किं कीरइ किं वा सुणिएण भावरहिएण
भावो कारणभूदो सायारणयार भूदाण ॥

卐

पढने से भी क्या करना औं—
सुनने से क्या भाव-रहित जो।
कारण भूत भाव ही चाहें—
अनागार सागारभूत हो।

卐

Without the inner attention and feeling mere reading and hearing (of scriptures) is of no value, because the true householdership and monkhood depends on (the attentiveness and purity of) inner feeling!

धम्मम्मि णिप्पवासो दोसावासो य उच्छुफुल्लसमो
णिप्फलणिग्गुणयारो णडसवणो णग्गरूवेण ॥

卐

धर्म वास मे निर्वासित जो-
दोष वास मय ईख पुष्प-सा।
वह निष्फल औ' निर्गुण कारक-
ज्यों कि श्रमण-नट नग्न रूप युत ॥

卐

Even although(the asp'rer ordains himself as) a nude monk, but having no faith in *Dharma* and being always engrossed in evils, he resembles the flower of sugarcane which is of no use and no worth (Such a monk may be looked upon as, an acrobat !)

खयरामरमणुयकरजलि मालाहि च संथुया विउला

चक्कहर रायलच्छी लब्भइ वोही सुभावेण ।।

卐

खचर अमर नरकर अंजलि की—
मालाओं से विपुल वन्दना ।
और चक्रधर राजलक्ष्मी—
बोधि लाभकर सौम्य भावना ।।

卐

It is due to his pure feeling that (the aspirer) gains the wealth of a paramount monarch, called *Chakravarti*, who is worshipped by the *Vidyadharas*, *Devas* and men.

भावं तिविहपयारं सुहासुहं सुद्धमेव णायव्वं
असुहं च अट्टरुद्दं सुह धम्मं जिणवरिंदेहिं ॥

卐

तीन भाँति के भाव शुभाशुभ —
और शुद्ध ये प्रकट बखाने।
आर्त रौद्र युग ध्यान अशुभ के—
शुभका धर्म ध्यान जिनवरने।

卐

The Lord Jinavara has defined the feeling of soul to be of three kinds, namely *Shubha* (meritorious), *asubha* (demeritorious) and *Shuddha* (pure). The *asubha* (dementorious) feelings cause *arta* (painful concentration) and *raudra* (wicked concentration) in thought, while *Shubha* (meritorious) feeling pruduces *Dharma* (righteous) *dhyana* (meditation).

पयलियमाणकसाओपयलियमिच्छत्तमोहसमचित्तो
पावइ तिहुवणसारं बोहो जिणसासणे जीवो ॥

卐

प्रगलित मान-कषाय व प्रगलित-
मिथ्यात्व औ' मोह प्रशम चित ।
पाते त्रिभुवन सार बोधि को—
जिनशासन में जीव जो कि रत ॥

卐

(It is a boon of the) Order of Lord Jina that every living being attains *Bodhi* (Right Enlightenment), which is the nectar of the three world, by having conquering the passion of conceit, the wrong belief and the feeling of attachment.

भावहि अणुवेक्खाओ अवरे पणवीसभावणा भावि
भावरहिएण कि पुण बाहिरलिंगेण कायव्वं ।।

卐

भाओ द्वादश अनुप्रेक्षाएँ—
और पचीस भावना भाओ ।
भाव-रहित होकर भी फिर क्या—
बाह्य लिंग से कुछ कर ओ ?

卐

O aspirer ! just contemplate on twelve *anupreksas* (meditations) and 25 feelings concerning (the five great vows, called *mahavratas*), because by keeping merely an outer appearance nothing worthwhile is obtained.

---

4. So far the verses are taken from 'Bhava-pahuda'.

सामग्गिदियरूवं आरोग्गं जोवणं बलं तेजं।
सोहग्गं लावण्ण सुरधणुमिव सस्सयं ण हवे ।।

卐

समग्र इन्द्रिय रूप सुयौवन –
बल आरोग्य तेजभामण्डल ।
लावण्य सुभाग्य इन्द्रधनुवत् –
कब रहते शाश्वत या अविकल ।।

卐

(Just ponder well, O aspirer, that the) body with all its sense organs, health, youth, physical power, grandeur, good luck and beauty are not of long duration (i. e. they are very transient) like the rainbow.

जीवणिबद्ध देहं खीरोदयमिव विणस्सदे सिग्घं
भोगोपभोगकारणदव्वं णिच्चं कहं होदि ॥

卐

जीव निबद्ध शरीर, क्षीर औ' —
नीर समान विनशता सत्वर।
भोगोपभोग कारण पदार्थ —
फिर कैसे हो सकते चिर थिर ॥

卐

This(physical)body which is intimately bound with the soul like milk and water decays soon-(Then)how can the worldly sense objects which are the means of engoyment and re-enjoyment (by this jody) be lasting ?

परमट्ठेण दु आदा देवासुरमणुवराय विविहेहिं
वदिरित्तो सो अप्पा सस्सदमिदि चितये णिच्चं ।।

卐

परमार्थ दृष्टि से तो आत्मा-
देवासुर नर राज आदि से।
है व्यतिरिक्त आत्म है शाश्वत-
चिन्तवन करो प्रतिदिन ऐसे ।।

卐

From the real point of view it should always be contemplated that the soul is distinct from the riches of the Lord of *devas* (celestial beings), *asuras* (worldly semigods) and human beings and that it is everlasting!

मणिमंतोसहरक्खा हयगयरहओ यसयलविज्जाओ
जीवाणं ण हि सरण तिसु लोए मरणसमयम्हि

卐

मणि मन्त्र सु-औषधि औ' घोडे-
गज, रथ तथा सफल विद्यायें।
नहीं जीव को शरण मरण के-
समय कहीं भी तीन लोक में॥

卐

Auspicious jewels, incantations, medicines, enchanted ashes, (all worldly possessions such as) horses, elephants, chariots and all the (other) sciences are really no protection for the mundane souls in the three worlds at the time of death !

अरुहा सिद्धा आइरिया उवझाया साहु पंचपरमेट्ठी
ते वि हु चेट्ठदि जम्हा तम्हा अदा हु मे सरणं ॥

卐

अर्हन्त सिद्ध आचार्य और-
उवझाय साधु परमेष्ठी हैं।
है वही आत्म भी मुझे शरण-
जिसमें कि तिष्टते वे भी हैं ॥

卐

(O aspirer, just remember that) even the worshipful *Arhantas* (spiritual Conquerors), the librated *Siddhas*, the Guides of Saints, i e. *Acharyas*, the preceptors among saints, i. e *Upadhyayas* and the saints (*Sadhus*) (who are called) the five *Paramestis* i e. the five classes of Soul in exalted positions are absorbed in Soul ; therfore my soul only is my protector.

सम्मत्तं सण्णाणं सच्चरित्तं च सत्तवो चेव।
चउरो चेट्ठदि आदे तम्हा आदा हु मे सरणम्॥

卐

सम्यक्दर्शन सम्यक् सुज्ञान—
सम्यक् चारित सत् तप सब ही।
ये चारों तिष्टे आत्मा में—
है वही आत्म मम शरण सही।

卐

Right Belief Right Knowledge, Right Conduct and Right Penance(all these)four exist in soul, therefore really the soul (alone) is my Protector !

एक्को करेदि कम्म एक्को हिडदि य दीहसंसारे
एक्को जायदि मरदि य तस्स फलं भुंजदे एक्को

卐

कर्म अकेला करे अकेला—
डोले जीव दीर्घ संसृति में।
जन्मे मरे अकेला ही यह—
सहे कर्म-फल एकाकी में॥

卐

(O aspirer, just ponder on the aloneness of your soul ! Remember, the embodied soul) alone does actions; it alone wanders in the long chain of mundane existence; it alone takes birth; it alone dies and it alone enjoys the fruits of its (actions) !

दंसणभट्टा भट्टा दंसणभट्टस्स णत्थि णिव्वाणं।
सज्झति चरियभट्टा दसणभट्टा ण सिज्झति ॥

卐

दर्शनभ्रष्ट भ्रष्ट है पूरा—
दर्शन भ्रष्ट न मोक्ष पा सके।
चरित् भ्रष्ट होता सुसिद्ध पर—
दर्शन भ्रष्ट न सिद्ध हो सके ॥

卐

(Those who are) devoid of right belief (are really) non-pious (because there) is no liberation to a wrong-believer. (Persons) wanting in conduct can be liberated, (but) wrong-believers are (never) liberated !

एक्कोहं णिम्ममो सुद्धो णाणदंसणलक्खणो ।
सुद्धेयत्तमुपादेयमेव चिंतेइ सव्वदा ॥

卐

मैं हूँ एक सु-नि र्मत्वयुत-
शुद्ध ज्ञान दर्शन लक्षणमय ।
शुद्धेकत्व सु उपादेय ही—
सदा करो यह चिन्तन तन्मय ॥

卐

'I (am) alone, no (other) is mine; (I am) pure, having the differentia of knowledge and conation, with absolute solitariness and am capable of bieng realised(by my self);-Thus a self-restrained one should contemplate.

मादापिदर सहोदर पुत्तकलत्तादि बंधु संदोहो
जोवस्स ण संबंधो णियकज्ज बसेण वट्टंति ॥

卐

माता पिता सहोदर भाई—
पुत्र कलत्र समग्र इष्ट जन।
ये नहीं जीव से सम्बन्धित—
निज कार्य वशात् करें वर्तन ॥

卐

Mother, father, brother, son, wife and other family members(have really) no connection with this soul(of mine). They deal (with me) with respect to their own purpose.

अण्णो अण्णं सोयदि मदोत्ति ममणाहगोत्ति मण्णंतो
अप्पाणं ण हु सोयदि ससार महण्णवे वुड्ढं ॥

卐

अन्य अन्य सोचता कि यह है—
मेरा स्वामी इष्ट मानता ।
अपने पन का सोच न करता—
ससार महार्णव मे गिरता ॥

卐

One grieves for another thinking that '(he) is my (relative or) my master.' (but) verily (he) does not feel sorry for himself, (who is) sinking in the great ocean of mundane wanderings (samsara)!

अण्णं इम सरीरादिगंपि जं होइ बाहिरं दव्वं ।
णाणं दंसणमादा एवं चिंतेहि अण्णत्तं ॥

卐

भिन्न दूसरे शरीरादि हैं—
ये तो सारे बाह्य द्रव्य भर ।
ज्ञान दर्शनागार आत्म यों—
अन्यत्व भावना चिन्तन कर ॥

卐

Even the body(is)different (from the soul),as(it)is an outwards substance.(This) soul(is) knowledge(and)perception. Thus otherness should be meditated upon.

पंचविहे संसारे जाइ-जरा-मरण-रोग-भय पउरे
जिण मग्गमपेच्छतो जीवो परिभमदि चिरकाल

卐

पंच प्रकार लोक गति में है—
जन्म, जरा, मृतु, रोग, भय प्रचुर।
जीव यही जिनमार्ग न देखे—
करता इनमें भ्रमण काल चिर॥

卐

In the five cycles of wandering full of birth, oldness, death, diesease and fear, this soul not seeing (realising) the way of th Conqueror Jina wanders for a long time !

पुत्तकलत्तणिमत्तं अत्थ अज्जयदि पावबुद्धीए।
परिहरदि दयादाणं सो जीवो भमदि संसारे ॥

卐

पुत्र कलत्र निमित्त अर्थ जो—
अर्जन करता पाप बुद्धि से।
परिहरि कर सब दया दान यह—
जीव भ्रमित संसार भ्रमण से ॥

卐

This mundane soul with filthy consciousness earns money for son and wife, abstains from compassion and charity, (and thus it) wanders in the world.

जत्तेण कुणइ पावं विसयणिमित्तं च अहणिसं जीवो।
मोहंधयारसहिओ तेण दु परिपडदि संसारे॥

卐

यत्न पूर्वक जीव करे अघ—
विषय निमित्त रात औ' दिन में।
मोहान्धकार के साथ सभी—
वे हुए परिपतित ससृति में॥

卐

The soul in the darkness of delusion day and night performs bad deeds with efforts for sensual pleasures. Therefore (it) roams in the world.

हत्तूण जीवरासिं महुमंसं सेविऊण सुरयाणं ।
परदव्व पर कलत्त गहिऊण य भमदि संसारे

卐

जीव राशि हन मांस और मधु-
सेवन को रत सुरापान में ।
द्रव्य कलत्र अन्य को गहता-
और भ्रमण करता संसृति में ॥

卐

(A wrong believer), having killed groups of mundane souls, having eaten flesh, intoxicating liquors and honey and having taken others' property and others' wives roams in the world !

मम पुत्तं मम भज्जा मम धणधण्णोत्ति
तिव्वकंखाए।
चइऊण धम्मबुद्धि पच्छा परिपडदि दोह संसारे ॥

卐

मेरा पुत्र और मम भार्या–
मम धनधान्य तीव्र इच्छाएँ ।
छोड़ छाड फिर धर्म बुद्धि को–
हुआ परिपतित दीर्घ जगत में ॥

卐

(A mundane soul) by strong desire (of worldly objects maintains) that (it is) my son, (it is) my wife, (it is) my cattle and corn, giving up knowledge of piety afterwards he falls in the worldly existence.

संसारमदिक्कंतो जीवोवादेयमिदि विचिंतिज्जो
संसारदुहक्कंतो जीवो सोहेयमिदिविचिंतिज्जो

卐

संसार अन्त कर मुक्त जीव ही—
उपादेय ऐसा चिन्तनकर ।
संसार दुःख आक्रान्त जीव ही—
हेयमान ऐसा चिन्तनकर ॥

卐

(Therefore), it should be meditated that the soul freed from the world is to be accepted; (and) it should be thought of that the soul engrossed with worldly sufferings is to be abandoned.

जीवादि पयट्ठाणं समवाओ सो णिरुच्चये लोगो
तिविहो हवेइ लोगो अहमज्झिम उड्ढभेयेण ॥

卐

जीवादि पदार्थों का सब वह—
समवाय लोक है कहलाता ।
फिर उर्द्ध, मध्य औ' अधोलोक-
यों त्रिविधि भेद उसका होता ॥

卐

The Universe is a compendium of souls and other substances; It is of three parts, the lower (Hellish region), the middle (Human region) and the upper (Heavenly region).

असुहेण णिरयतिरियं सुहउवजोगेण दिविजणर-

सोक्खं।

सुद्धेण लहइ सिद्धिं एवं लोय विचिंतिज्जो ॥

卐

नर्क त्रियच अशुभ भावों से,

शुभोपयोग से देव मनुज सुख ।

शुद्ध भाव से सिद्ध लाभ है,

ऐसा चिन्तन करो लोक लख ॥

卐

(The mundane soul gets), hellish (and) sub-human (conditions) owing to bad thought activity, pleasures of heavens and human birth by goodness and prefectness by purity, thus universe should be meditated upon.

सतासो

अट्ठीहिपडिबद्ध मसविलित्तं तएण ओच्छण्णं।
किमिसकुलेहिं भरिदम्, चोक्खं देह संयाकालं ॥

卐

अस्थिजाल परिबद्ध मांस से—
लिप्त त्वचा से अच्छादित है।
कृम सकुल से भरी हुई यह—
देह अपावन सदा काल है ॥

卐

This body is made up of bones, pasted with flesh, covered with skin, and filled with groups of insects So (it is) always impure.

दुग्गंध बीभत्थं कलिमल भरिदं अचेयणो मुत्तं।

सडण पडणं सहाव देहं इदि चिन्तये णिच्चं ॥

卐

दुर्गन्धित वीभत्स रूप औ'
कलि मल पूरित मूर्त अचेतन।
स्खलन गलन स्वभाव मय तन यह,
करो चिन्तवन ऐसा प्रतिदिन ॥

卐

It should always be meditated that this body is bad smelling, full of ugly dirt, unconscious, material, having the nature of rotting and falling off.

रसरुहिरमसमेदट्ठीमज्जसकुल मुत्तपूयकिमिबहुलं
दुग्गंधमसुचि चम्मयमणिच्चमचेयण पडणम् ॥

卐

रस रुधिर मांस मेदास्थि मज्ज—
सकुल मलमूत्र जन्तु अगणित ।
दुर्गन्धित अशुचि चर्म वेष्ठित—
अस्थिर जड़ देही पतित गलित ॥

卐

(This body is)full of juice, blood, flesh, fat, bones and marrow, (has) within it dirty water, rotten blood and many germs and insects, (is)bad-smelling, impure, covered with skin, impermanent, un-conscious and is subject to decay.

देहादो वदिरित्तो कम्मविरहिओ अणतसुहणिलयो
चोक्खो हवेइअप्पा इदि णिच्चं भावण कुज्जा ।।

卐

तन व्यतिरिक्तकर्म से खाली—
ओ' अनन्तत. सुख आवासित ।
चोखी प्रशस्त आत्मा है यह—
भावना करो ऐसी ही नित ।।

卐

It should always be meditated that this soul (which resides in this body)is separte from the body, is free from Karmas, (and is the) abode of infuite happiness and is pure.

मिच्छत्तं अविरमण कसायजोगा य आसवा होंति
पण पण चउतिय भेदा सम्मं परिकित्तिदा समए

卐

मिथ्यात्व और अविरत कषाय—
औ' योग यही आस्रव होते।
पाँच पाँच औ' चार तीन यों—
सम्यक् समय शास्त्र बतलाते ॥

卐

Wrong belief, vowlessness, passions and soul vibrations are the causes for the inflow (of karmic molecules into the soul). (They) have been rightly described to be of five, five, four and three kinds (respectively) in the scriptiures.

कम्मासवेण जीवो बूडदि संसारसागरे घोरे।
जण्णाणवसं किरिया मोक्खणिमित्तं परंपरया

卐

कर्माश्रव से जीव बूढ़ता—
है संसार घोर सागर में ।
ज्ञानवान सुक्रिया है होती—
मोक्ष निमित्त सुपरम्परा में ॥

卐

Owing to the inflow of karmas the soul sinks in the dreadful ocean of worldly existence. The conduct based on(right)knowledge is gradually thecause of liberation.

सुद्ध्‌ुवजोगेण पुणो धम्मं सुक्कं च होदि जीवस्स
तम्हा सवरहेदू झाणोत्ति विचितये णिच्चं।

卐

शुद्धोपयोग से होता फिर—
धर्म-ध्यान सत् शुक्ल जीव का।
इस संवर का हेतु ध्यान ही—
ऐसे चिन्तन हो प्रतिदिन का॥

卐

By virtue of pure thought-activity righteous and pure concentrations appear in the soul; therefore (one) should always meditate upon concentration to the cause of checking(the inflow of karmas).

बंधपदेसग्गलणं णिज्जरणं इदि हि जिणवरोषत्तम्
जेण हवे संवरणं तेण दु णिज्जरणमिदि जाणे

卐

बंध प्रदेशों का गलना ही—
जिनवर ने निर्जरा बताई ।
जिनसे होता संवर वे ही—
हैं जानो निर्जरा सहाई ॥

卐

Separation of(Karmic)molecules (which were)in bndage (with the soul is) shedding (of karmas)-so has been said by the Spiritual Conquerors, called *Jinavaras* Know that shedding of (karmas is caused)by the same process by which checking (of them) is done.

सा पुण दुविहा रोया सकलय रका तवेण कयामणा
चादुगदीणं पढमा वयजुत्ताण हवे बिदिया ।।

卐

वह पुनः दो तरह का जानो—
निज समय पक्व, तप से पकता ।
पहला चारों गति वालों के—
दूसरा सुव्रतियों के होता ।।

卐

Again that (*Nirjara*) should be known to be of two kinds, matured at their own time and caused (to be matured) by austerity. The frist (is found) in all the beings of the four conditions of worldly existence; the secondis in those endowed with vows.

एयारसदसभेयं धम्मं सम्मत्तपुव्वयं भणिय ।
सागारणगाराणं उत्तमसुह संपजुत्तेहि ॥

卐

एकादश दश भेद धर्म के—
सम्यक्त्व युक्त जो परिख्यापित ।
सागार और अनगार रूप—
उत्तम सुख-सम्पद से संयुत ॥

卐

Dharma has been said to be of eleven and ten kinds with previous (acquisition of) right belief for the lay men and the saints (respectively) by the Enjoyer of Highest Bliss.

जिण वयणगहिदसारा विसय विरत्ता तपोधणा घोरा।
सीलसलिलेण ण्हादा ते सिद्धालयसुहं जंति ॥

卐

जिन वचनामृत सार गृहण कर,
विषय विरक्त, तपोधन घृतियुत।
शील-सलिल स्नात जोकि वे,
होते सिद्धालय सुख आगत ॥

卐

(The aspirer, who grasps the) true meaning of the 'Word' of *Jina* (spiritual conqueror), who giving up the (evil tendency of) sensual gratification adopts austerities and who always bathes (himself in the pure) water of *Shīla* (i. e. absorption of soul in his own spiritual nature), he attains the bliss of *Siddhālaya* (i. e. abode of liberated pure souls)!

अट्ठानवे

सावयधम्मं चत्ता जदिधम्मे जो हु वट्टए जीवो
सो ण अवज्जदि मोक्खं धम्मं इदि चिंतये णिच्चं

卐

श्रावक सु-धर्म पर चलकर दृढ़-
मुनि धर्म वर्तता जो प्राणी
वह न मोक्ष से वर्जित होता-
धर्म विषय सोचो नित ज्ञानी ॥

卐

The soul, who after observing the ethics of a layman verily follows the ethics of a saint does not fail to attain liberation. Thus *Dharma* (piety) should always be meditated upon.

उप्पज्जदि सण्णाणं जेण उवाएण तस्सुवायस्स
चिंता हवेइ बोही अच्चंत्तं दुल्ह होदि ॥

卐

जिस उपाय द्वारा सच सम्यक—
ज्ञानोत्पन्न उपाय वही ।
चिन्तन होवे उसका, आशय—
दुर्लभ सुबोधि है होती ही ॥

卐

Meditation upon the cause of right knowledge by the soul is the cause of *Bodhi*. Remember, the *Bodhi* is most difficult to be obtained.

णवविहबंभं पयडहि अब्बंभं दसविहं पमोत्तूण
मेहुणसण्णा सत्तो भमिओसि भवण्णवे भीमे ॥

卐

नव विधि ब्रह्मचर्य प्रकटाया—
कहा अब्रह्मचर्य दश विधि में ।
मैथुन संज्ञा आसक्त अमित—
होगा वह भीम भवार्णव में ॥

卐

(O soul !) just observe the nine kinds of vow of *Bahmacharya* (celibacy) after giving up ten kinds of unchastity. (Remember) those persons who remain engrossed vehemently in the sexual instinct always have to roam in the deep ocean of worldly transmigration.

विणयंपंचपयारं पालहि मणवयणकाय जोएण ।
अविणयणरा सविहियं हत्तो मुत्तिं न पावंति ॥

卐

पंच प्रकार विनय पालन कर—
मन, वच, काय योग के द्वारा ।
अविनत नर तो, कभी न पायें—
सुविहित जो वह मुक्ति किनारा ॥

卐

(O aspirer)observe the five kinds of respect and reverence (towards the deserving people)because the persons who are wanting in showing reverence to others are never (destined to) obtain the libreration.

णियसत्तिये महाजस भत्तीराएण णिच्चकालम्मि
त कुण जिणभत्तिपर विज्जावच्चं दसवियप्पं

卐

निज बल अनुसार महायश हे !
रह भक्ति राग रत दिन प्रति दिन ।
कर तू परम जिनेन्द्र भक्ति को—
दशविध वैयावृत्य सुमुनि जन ॥

卐

Oh the great fortunate Soul ! Imbibe (the spirit of) love and devotion according to your strnegth. Absorb yourself in the devotion of *Jinas* (Spiritual Conquerors) and perform ten kinds of selfless service, (called) *Vaiyāvratya.*

जं किंचिकयं दोस मणवयकाएहिं असुहभावेण
तं गरहि गुरुसयासे गारव मायं च मोत्तूणं ॥

卐

जो कुछ भी है दोश किया रे—
मन वच काया अशुभ भाव से ।
न गुरुगौरव, माया को तज—
गर्हा कर गुरु पास प्रकाशे ॥

卐

If by the dint of demeritorious feelings you have committed something wrong by mind, speech and body, make it known to your preceptor without conceit and deceit, (so that by this) *garava* (process, you may expiate the blemish of the wrong blunder.)

झायहि धम्मं सुक्कं अट्ट रउद्दं च झाण मुत्तूण
रुद्दट्ट झाइयाइं इमेण जीवेण चिरकालं ॥

卐

ध्याओ धार्मिक शुक्ल ध्यान को—
छोडो आर्त रौद्र ध्यानो को
जीवों ने चिर काल बिताए—
यों ध्यावे इन आर्त रौद्र को ॥

卐

O Soul, after giving up the (evil feelings) of ārta i. e. (Monomania) and *raudra*, i. e (wickd concentration) you just (devote yourself) to the observance of the righteous *Shukla-Dhyāna* (Pure Concentration of the Soul). (Remember, you) have been observing the *ārta* and *raudra* since a long long period. +

+ Taken from 'Bhāvapāhuda'